शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञा

साध्वी यशोधरा

शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञा

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञा

साध्वी यशोधरा

© आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञा

लेखक : साध्वी यशोधरा

प्रकाशक : आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११० ००२

प्रथम संस्करण : सन २०१३

मूल्य : पचास रुपये

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-११० ०३२

SHASANSHREE SADHVI SIDHPRAJNA by Sadhvi Yashodhra Rs. 50.00

आशीर्वचन

शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी हमारे धर्मसंघ की एक विशिष्ट साध्वी थी। उनकी ज्ञानचेतना प्रशस्य थी। उनमें सेवाभावना का भी दर्शन होता था। मैंने देखा, आचार्य महाप्रज्ञजी भी उनके प्रति कृपाभाव रखते थे। उनका देहावसान हो गया, उस समय होने वाली स्मृतिसभा के दौरान मैंने शासनश्री साध्वी यशोधराजी को उनकी जीवनी लिखने का इंगित प्रदान किया। उन्होंने शीघ्र इंगित को साकार कर दिया, इसलिए उन्हें साधुवाद। प्रस्तुत जीवनवृत्त पाठक के लिए आध्यात्मिक प्रेरणादायी बने। शुभाशंसा।

जसोल (राजस्थान) **—आचार्य महाश्रमण**

२७-११-२०१२

पुरोवाक्

सफलता का आधार उद्देश्य में निहित रहता है। हमारे जीवन का उद्देश्य क्या हो? इस प्रश्न पर अनेक रूपों में विचार किया जा सकता है। महान् चिन्तक आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने साधना की पृष्ठभूमि पर इसका समाधान दिया। उन्होंने कहा—जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए—ज्ञान, दर्शन और चारित्र में सामंजस्य स्थापित करना।

जीवन में इन तीनों का उतना ही महत्त्व है, जितना महत्त्व हमारे शरीर में मस्तिष्क, हृदय तथा हाथ-पैर का है।

ज्ञान हमारा मस्तिष्क है।

दर्शन हमारा हृदय है।

चारित्र हमारे हाथ-पैर हैं।

जो इन तीनों में विसंगतियों को मिटाकर सामंजस्य स्थापित करता है, वह उच्चता के पायदान तक पहुंच जाता है। लेकिन इस सचाई को समझने वाले विरले होते हैं। उन विरल व्यक्तित्वों में एक नाम है—शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी।

मणिहारे ने मेला में दुकान लगाई। अन्य चीजों के साथ एक कांच का चमकता पत्थर भी सजाकर रखा। उधर से एक जौहरी निकला। उसकी दृष्टि उस पत्थर पर अटक गई। बातचीत का क्रम प्रारम्भ हुआ।

जौहरी—इस चमकीलें पत्थर का क्या मूल्य लोगे?

दुकानदार—बीस रुपए।

जौहरी—यदि पन्द्रह रुपए लो तो मैं इसे तत्काल खरीद सकता हूं।

दुकानदार—नहीं, यह संभव नहीं।

जौहरी—(मन ही मन—थोड़ी देर घूमकर आता हूं, फिर खरीद लूंगा)

दूसरा जौहरी—अरे भाई! इस चमकीले पत्थर को कितने रुपयों में दोगे?

दुकानदार—पच्चीस रुपए।

दूसरा जौहरी—(तत्काल) ये लो रुपए और यह पत्थर मुझे दे दो।

(थोड़ी देर बाद) पहला जौहरी—अरे! वह चमकीला पत्थर कहां है?

दुकानदान—वह तो मैंने पच्चीस रुपयों में बेच दिया।

पहला जौहरी—अरे मूर्ख! यह क्या किया? वह तो सवा लाख का कीमती हीरा था।

दुकानदार—भाई साहब! मैंने तो उसको जंगल में चमकीला पत्थर समझकर उठाया था। मैंने २५ रुपए कमा लिए। मुझे तो आप पर हंसी आती है कि आपने जानते हुए भी पांच रुपयों के लिए सवा लाख का कीमती हीरा गंवा दिया। अब आप ही बताइए कि मूर्ख मैं हूं या आप?

मूल्यांकन का दृष्टिकोण अपना-अपना होता है। यह शरीर भी एक पत्थर का टुकड़ा है, उस व्यक्ति के लिए जो इसका मूल्य ही नहीं जानता।

शरीर एक कीमती हीरा है, उस व्यक्ति के लिए जो इसका मूल्य जानता है। पर मूर्च्छावश लाभ नहीं उठा पाता।

तीसरा दृष्टिकोण उस व्यक्ति का है, जो इसका मूल्य भी जानता है और प्रतिक्षण जागरूक रहकर इसका पूरा लाभ उठाता है।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी उस जौहरी की तरह थी जिसने शरीर के मूल्य को पहचाना और उसका पूरा उपयोग किया। उन्होंने अपने कर्तृत्व से शरीर की सदा उपयोगिता सिद्ध की।

वही व्यक्ति जीवन में विकास के नए क्षितिज खोल सकता है जिसके हृदय सागर में अदम्य उत्साह की उत्ताल तरंगे तरंगित होती हैं। उतार-चढ़ाव भरी जिन्दगी में भी गतिशील रहने का हिमालयी संकल्प होता है।

'उसके चरण ठिठक जाते हैं, जिसने छोटा लक्ष्य बनाया।'

सिद्धप्रज्ञाजी की जीवन गाथा पुरुषार्थ की जीवन्त गाथा का आलेख है। पदयात्रा में कभी-कभी अच्छी क्वालिटी के दस कदम चलना भी उनके लिए मुश्किल हो जाता था किन्तु श्रुतयात्रा में उनके चरण सतत गतिशील रहे। अटूट संकल्पशक्ति, पुष्ट आस्थाबल, अविचल धैर्य, गाम्भीर्य, कर्म में विश्वास, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, सेवा परायणता, सहिष्णुता, पल-पल अप्रमत्तता, सतत जागरूकता, सकारात्मक सोच, अध्ययन-अध्यापन में अनलसता—इन सबका समवाय था साध्वी सिद्धप्रज्ञा का जीवन।

उनके शरीर की स्थिति देखने वाले द्रवित हो जाते पर वह चट्टान की तरह मजबूत थी। उनकी दृष्टि में स्वस्थ चिकित्सा पद्धति थी—गुरु कुशल महाचिकित्सक हैं। साध्वियों का सहयोग-सहानुभूति महान् पथ्य है, संकल्प ग्लूकोज है, अनुप्रेक्षा टॉनिक है, कायोत्सर्ग बेडरेस्ट है, जप महान् औषध है, आगमकोश सुप्रतिष्ठान है। यह है—इन्फेक्शन-रिएक्शन के खतरों से मुक्त चिकित्सा पद्धति। उनकी ही लेखनी से—मैं स्वस्थ हूं, क्योंकि मेरी अस्थियां अच्छी हैं। 'मुझे बीमारी है पर मैं बीमार नहीं हूं।' 'मेरी आत्मा स्वस्थ है।' गुरुदेवः शरणमस्तु। इसीलिए गणाधिपति गुरुदेवश्री तुलसी ने संदेश में लिखा—

'सिद्धप्रज्ञा! तुम अस्वस्थ होते हुए भी स्वस्थ हो। तन-चेतन का भेद स्पष्ट दिखाई देता है। तन अस्वस्थ है और चेतन स्वस्थ है। श्रद्धा का बल भी कितना प्रबल होता है, इसका भी उदाहरण देखना हो तो दिखाई देता है। प्रज्ञापुरुष आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने लिखा—

सिद्धप्रज्ञा! तुम्हारी प्रज्ञा सिद्ध है, स्थित है। इसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। शारीरिक स्थिति की प्रतिकूलता होने पर भी प्रसन्नता और सहजता का अनुभव करती हो, वह स्वतः सिद्ध प्रमाण है। मातृहृदया महाश्रमणीजी ने लिखा—

सिद्धप्रज्ञाजी! अस्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन की जीवन्त प्रतीक हो तुम। पूज्यप्रवरों की अन्तहीन अनुग्रह-अनुकम्पा ही उनकी जीवनी शक्ति को बढ़ा रही थी। चार-चार मंत्री उनके परिपार्श्व में सजगप्रहरी की तरह तैनात थे—विवेक-शिक्षामंत्री, साहस-रक्षामंत्री, पुरुषार्थ-अर्थमंत्री और सद्भाव-गृहमंत्री।

भयंकर वेदना में समता-सहिष्णुता, उफ तक न करना, हर स्थिति में संतुलन, सहज प्रसन्नता, चेहरे पर मधुर मुस्कान उनकी निजी पहचान थी।

शान्तिदूत आचार्यश्री महाश्रमणजी ने उनकी विशेषताओं का आकलन करते हुए छोटी उम्र में उन्हें 'शासनश्री' सम्बोधन से संबोधित किया। 'मुहूर्त्तं ज्वलितं श्रेयः न च धूमायितं चिरं' धूआं बन कर लम्बे काल तक जीने की अपेक्षा ज्योतिर्मय जीवन जीना उन्हें ज्यादा पसन्द था। इसलिए वे जब तक रही, ज्योति बनकर प्रकाश बांटती रही। उनकी जीवन पोथी का हर पृष्ठ सुनहरा और प्रेरक है। यह जीवन की सार्थकता का स्वयंभू प्रमाण है।

ऐसे जीवन्त व्यक्तित्व के जीवनवृत्त का आलेखन एक दुरूह यात्रा

करने जैसा लग रहा था। लेकिन जैसे-जैसे कदम आगे बढ़े, रास्ता अपने आप आसान होता चला गया। मंजिल का निशां अपने आप मिलता रहा। पूज्यप्रवर का मंगल निर्देश इस पुस्तिका का प्राणतत्त्व है। जिसकी अनुभूति की जा सकती है, अभिव्यञ्जना नहीं।

वात्सल्यमूर्त्ति महनीया महाश्रमणीजी की प्रेरणा प्रकाश बनकर राह दिखाती रही। साध्वी विमलप्रज्ञाजी का आत्मीय सहयोग सदा उपलब्ध रहा। साध्वियों, समणीजी, मुमुक्षु बहनों के संस्मरण भी इस पुस्तिका के प्रेरक पृष्ठ बने। पूज्यप्रवरों के मंगल संदेश ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। संजीवनी बूटी हैं। अलसाए प्राणों में नव पुलकन, स्फुरणा एवं प्राणधारा का संचार करनेवाले हैं। वह कितनी कृपापात्र एवं सौभाग्यशालिनी थी, उसकी छवि इनमें निहारी जा सकती है। वह शिष्य कितना धन्य कृतपुण्य होता है जिसे समय-समय पर गुरुकृपा-प्रसाद मिलता रहता है।

—साध्वी यशोधरा

अनुक्रम

१. लाडनूं का गौरव	१
२. शैशव	२
३. दीक्षा का संकल्प	३
४. मुमुक्षु की प्रथम स्टेज : पारमार्थिकशिक्षण संस्था	५
५. धैर्य का बांध टूटने लगा	७
६. संन्यास की दिशा में प्रस्थान	६
७. असातावेदनीय का उदय	१०
८. संकल्प की पूर्णाहुति	११
६. बहिर्विहार की वन्दना	११
१०. शिक्षाकेन्द्र की स्थापना	१२
११. शिवाम्बु-चिकित्सा	१३
१२. आगमकार्य में नियुक्ति	१३
१३. निरुक्तकोश का सम्पादन	१४
१४. देशीशब्दकोश में महत्त्वपूर्ण योगदान	१५
१५. श्रीभिक्षु आगमविषयकोश की ओर प्रस्थान	१५
१६. श्रीभिक्षु आगमविषयकोश (द्वितीय भाग)	१७
१७. कृतज्ञता पत्र	१६
१८. आयारचूला का अनुवाद	२१
१६. जैनपारिभाषिक शब्दकोश में योगदान	२१
२०. संस्कृत काव्य के सम्पादन में सहयोग	२२
२१. गीत प्रतियोगिता में प्रथम स्थान	२३
२२. गुरुकृपा का प्रसाद	२५
२३. अनुप्रेक्षा से नया अर्थ	२५

२४. परार्थ में समय का नियोजन २६
२५. धुन की धनी २८
२६. लाडनूं पुस्तकभण्डार २६
२७. सहिष्णुता की साकार प्रतिमा २६
२८. अप्रतिकर्म की साधना ३०
२६. आत्मनिवेदन ३१
३०. विनम्र प्रतिवेदन ३३
३१. कृतार्थ हुआ संकल्प ३६
३२. गुरु-आदेश का सम्प्रेषण : गुरुदेव का निर्देश ३७
३३. श्लाघनीय खाद्य संयम ३८
३४. धन्वन्तरि वैद्य ३६
३५. सेवा के निदर्शन ४०
३६. लोगस्स का चमत्कार ४१
३७. रात्रि जागरण ४२
३८. लाडनूं की चाकरी ४२
३६. अनशन में सेवा-सहकार ४४
४०. संस्मरणों के आलोक में ४६
४१. शिक्षा-दर्पण ६५
४२. अप्रत्यक्ष आभास ६७
४३. संयम यात्रा का अन्तिम पड़ाव ६६
४४. जगमगता दीया बुझ गया ७०
४५. स्मृतिसभा में पूज्यप्रवरों के उद्गार ७२
४६. अमृत संदेश ८२
४७. परिशिष्ट ६८
४८. बख्शीस ६८
४६. परिवार के दीक्षित साधु-साध्वियां ६८
५०. संस्कारदाता मुनिश्री अमृतानन्दजी ६६

लाडनूं का गौरव

राजस्थान के नागोर जिले में तेरापंथ की राजधानी लाडनूं। जिसे गणाधिपति गुरुदेव तुलसी की जन्मभूमि, दीक्षाभूमि और कर्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। जिस पुण्यधरा पर आचार्य भिक्षु का पदार्पण हुआ। जो आचार्य मघवा और आचार्य माणक की दीक्षाभूमि है। इसी धरा पर आचार्य डालगणी का चयन और स्वर्गवास हुआ। जिसे सहिष्णुता की प्रतिमूर्त्ति साध्वीप्रमुखा लाडांजी तथा संघमहानिदेशिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी की जन्मभूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। जहां जैनविश्वभारती, जैनविश्वभारती विश्वविद्यालय, पारमार्थिकशिक्षणसंस्था और सबसे पुराना सेवाकेन्द्र है। ऐसी तीर्थभूमि, तपोभूमि लाडनूं में गोलछा परिवार भी इतिहास की अमर धरोहर है।

लाडनूं की धरती में प्रथम दीक्षित हुए—मुनि तेजपालजी। इनका जन्म गोलछा परिवार में हुआ। तेजपाल के मन में वैराग्य के बीज प्रस्फुटित हो गए। लेकिन परिवार वाले दीक्षा देने को तैयार नहीं थे। युवाचार्य जीतमलजी को जब इस बात का पता चला तब उन्होंने तेजपालजी के पिता को युक्तिपुरस्सर समझाते हुए कहा—देखो! तुम्हारा और हमारा एक गोत्र है अतः तुम अपने पांच पुत्रों में से एक पुत्र को मुझे गोद दिया ही समझकर इसे दीक्षा की अनुमति दे दो। युक्तिपूर्वक समझाने पर उन्होंने अनुज्ञा दे दी। तेजपालजी लाडनूं के प्रथम संत थे। इससे गोलछा परिवार का गौरव और बढ़ गया। आगे चलकर गोलछा परिवार के अनेक भाई-बहनों ने दीक्षा स्वीकार कर धर्मसंघ की श्रीवृद्धि की।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी इसी गोलछा परिवार की लाडली बेटी थी। गोलछा गोत्र में रतनचन्दजी एक प्रतिष्ठित श्रावक थे। इनके तीन पुत्र थे। सबसे छोटे पुत्र थे चन्दनमलजी। चन्दनमलजी के आंगन में नन्हीं बालिका किलकारियां

भरने लगी। जो मातुश्री रायकंवरी देवी की कुक्षि से अवतरित हुई। वि. सं. २००७ कार्तिक कृष्णा एकादशी को जन्मी इस बालिका को प्यार भरा संबोधन मिला—सुशीला।

शैशव

सुशीला बचपन से ही सौम्य, सुशील और सबकी चहेती थी। बच्चे स्वभावतः चंचल होते हैं। उनमें खेलना-कूदना सहज होता है। पर सुशीला की प्रकृति भिन्न थी। बचपन से ही गंभीर व स्थिरयोगी थी। सहिष्णुता जैसे जन्म से ही उसकी सहचरी थी। जब वह दो या तीन वर्ष की थी तब शरीर में फोड़े-फुन्सी और हथेली में बड़ा फफोला उभर आया था। ऐसी स्थिति में भी बिना उफ किए मां के साथ लम्बे काल तक साध्वियों की उपासना में बैठी रहती थी। साध्वियों से उसे बड़ा अनुराग था। देखने वालों के मन में करुणाभाव उभर आता लेकिन उसने वेदना को लेकर मां को कभी परेशान नहीं किया।

जब वह कक्षा पांचवीं में पढ़ती थी, उस समय एक दिन उसने पौषध किया। पौषध में चींटी काटने लगी। उसके मन में विकल्प उठा—देखती हूं—चींटी कितनी देर काटती है। वह उसे द्रष्टाभाव से देखती रही। उसने अपनी सहपाठी को कहा—देखो! चींटी मुझे काट रही है, मैं देख रही हूं यह कितनी देर काटती है। उसने कहा—तुम कितनी भोली हो। यह भी कोई देखने की बात है?

प्रारम्भ से ही उसकी पहचान प्रतिभासम्पन्न छात्रा के रूप में रही। स्कूल में उसने सदा प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसलिए अध्यापिकाओं के मन में वह एक प्रतिभाशाली छात्रा के रूप में प्रतिबिम्बित थी। वह भी अपनी अध्यापिकाओं के प्रति अत्यन्त विनम्र थी। कभी ज्ञान का अहंकार नहीं किया। जब कभी किसी छात्रा को अध्ययन के क्षेत्र में सहयोग की अपेक्षा होती, वह तत्काल अपना कार्य गौण कर उसका सहयोग करती। आत्मीय भाव से उसे अध्यापन कराती। समझाने का तरीका भी बहुत सहज, सरल एवं तर्कसंगत था, जिससे हर बात सीधी गले के नीचे उतर जाती।

सहपाठी छात्राएं उसे सम्मान की दृष्टि से देखती थी इसलिए वे उसे

'सुशीला बाई' शब्द से सम्बोधित करती थी। पांचवीं कक्षा तक तो यह क्रम चलता रहा। एक दिन एक अध्यापिका ने छात्राओं से कहा—यह बाई-बाई क्या है? सुनने में अच्छा नहीं लगता। यदि आप सब सम्मान की दृष्टि से बोलती हैं तो बाई के स्थान पर 'जी' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। तब से सभी बहनें 'जी' का प्रयोग करने लगी। यह घटना इस बात का संकेत करती है कि उसका सबके साथ कितना आत्मीय सम्बन्ध था। अपने मधुर व्यवहार से सबको अपनत्व के धागे में बांध लिया था।

सुशीला प्रारम्भ से ही संकोचशील स्वभाव की थी। भय-संज्ञा भी उसके संस्कारों में व्याप्त थी। जब वह दूसरी कक्षा में पढ़ती थी, तब एक दिन उसकी पाटी टूट गई। वह रोने लगी—अध्यापिका ने बहुत समझाया लेकिन उसके मन में भय था, घर जाने पर पिताजी की डांट पड़ेगी। घर आने पर पिताजी ने पूछा—क्या बात है? आज रो क्यों रही हो? तब उसने कहा—मेरी पाटी टूट गई है। पिताजी ने कहा—इसमें रोने की क्या बात है? पाटी नई आ जाएगी। यह सुनकर उसका भयभीत मन शान्त हुआ।

दीक्षा का संकल्प

धार्मिक परिवार में जन्म लेने के कारण धर्म के संस्कार जन्मघुंटी के साथ ही प्राप्त थे। माला फेरना, साध्वियों के दर्शन करना, गोचरी की भावना भाना, फिर प्रातराश करना उसकी जीवनचर्या के अभिन्न अंग थे। इसलिए अव्यक्त रूप में वैराग्य के अंकुर भीतर ही भीतर पकने लगे। जब वह छह या सात वर्ष की थी। एक दिन स्कूल से आकर अल्पाहार किया और उसी स्थान पर बैठी रही। लम्बा समय व्यतीत हो गया, वह अपने स्थान से उठी नहीं। मां ने देखा यह कब की यहां बैठी है, उठती क्यों नहीं है? मां ने कहा—यहां बैठी-बैठी क्या कर रही हो? सुशीला ने कहा—मां! कैसे उठूं? उठा ही नहीं जाता। पांव जाम हो गए हैं। मां ने पास में आकर उठाने का प्रयत्न किया, लेकिन पांव सीधे नहीं हुए। आखिर उसे हॉस्पिटल ले गए। उपचार चला। पचास इंजेक्शन लगाए गए। पर सफलता नहीं मिली। पारिवारिक लोग चिन्तित थे।

एक दिन उसके बुआजी घर आए। उन्होंने प्रसंगवश फूफांजी तपस्वी

मुनि हुलासमलजी का संस्मरण सुनाया—एक बार वे कोलकाता से लाडनूं आ रहे थे। अचानक रेल दुर्घटना को देखकर उनके भीतर वैराग्य के बीज प्रस्फुटित हो गए। उसी समय उन्होंने संकल्प किया—अब मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। लाडनूं पहुंचकर उन्होंने अपनी पत्नी को भीतर ही भीतर तैयार किया। उनके भीतर भी विरक्ति की चेतना जागी। दोनों ने सजोड़े कालूगणी के करकमलों से जैन भागवती दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा स्वीकार कर घोर तपस्या कर जीवन को सार्थकता दी।

सुशीला घटना को ध्यान से सुन रही थी। इस घटना ने उसे भी अध्यात्म के मोड़ पर खड़ा कर दिया। उसने भी मन ही मन एक संकल्प किया—यदि इस बीमारी से मुक्त हो जाऊं तो मैं भी शादी नहीं करूंगी। साध्वी बनकर अध्यात्म का जीवन जीऊंगी। संकल्प शक्ति का चमत्कार—पैरों का दर्द कपूर की तरह काफूर हो गया। जो काम दवा नहीं कर सकी, वह काम संकल्प-शक्ति ने कर दिखाया।

सुशीला का वैराग्य भीतर-भीतर पकने लगा। लेकिन संकोच से उसे अभिव्यक्ति नहीं दी। जब वह आठवीं कक्षा में पढ़ रही थी तब तक उसने महासभा द्वारा आयोजित जैनविद्या पाठ्यक्रम की छह वर्ष की परीक्षा सम्पन्न कर ली थी। उसने मन ही मन चिन्तन किया—यदि परिवारवालों के सम्मुख अपनी भावना नहीं रखूंगी तो मेरा आगे का द्वार कैसे खुलेगा। उसने परिवार वालों के सम्मुख अपनी भावना रखी। परिवार में अध्यात्म के गहरे संस्कार थे। अब तक गोलछा परिवार की अनेक दीक्षाएं भी हो चुकी थी। इसलिए दीक्षा की आज्ञा में अधिक कठिनाई नहीं आई।

जब स्कूल में शिक्षिकाओं को इस बात का पता चला तो उन्हें आघात-सा लगा। चूंकि वह स्कूल की शोभा थी। उन्होंने सुशीला को बहुत समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा—तुम्हारे भीतर एक ऐसी प्रतिभा है जिससे तुम शिक्षा के क्षेत्र में अनेक डिग्रियां हासिल कर नया कीर्तिमान स्थापित कर सकती हो। लेकिन सुशीला का संकल्प फौलादी था। इसलिए कोई भी आकर्षण उसे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सका।

मुमुक्षु की प्रथम स्टेज : पारमार्थिक शिक्षण संस्था

आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर सुशीला ने पारमार्थिक शिक्षण संस्था में प्रवेश किया। संस्था में वह सात वर्ष तक रही। इससे पहले संस्था का कोई भवन नहीं था। संस्था गुरुदेव की पदयात्रा में प्रायः साथ ही रहती थी। लेकिन जब लाडनूं में संस्था का स्थायी आवास हो गया तब अध्ययन का क्रम भी आगे बढ़ गया। बी.ए. का अध्ययन करने के लिए तीन वर्ष का पाठ्यक्रम बना उसमें अध्ययनशील बहनों को जोड़ दिया गया। इसलिए सुशीला का संस्था का कार्यकाल चार से सात वर्ष हो गया।

सुशीला पढ़ने में सदा से ही तेज थी। जब उन्होंने प्रथम वर्ष की परीक्षा दी, तब पूरी संस्था में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। अपनी कक्षा में तो प्रथम स्थान पर उसका एकाधिकार था। कभी दूसरी बहन को यह मौका ही नहीं दिया। वह स्वयं पढ़ने में जितना समय लगाती, उससे ज्यादा दूसरों को पढ़ाने में समय लगाती थी। उसका विश्वास था—दूसरों को पढ़ाने से स्वयं का ज्ञान पुष्ट होता है। इसलिए जब भी जो बहन उसके पास अध्ययन करने या कोई समस्या का समाधान पाने आती, वह तत्काल अपना अध्ययन छोड़कर उसे पढ़ाने में लग जाती। कभी ऐसा नहीं कहा—मुझे समय नहीं है।

संस्था में उसने चार वर्ष तक गुरुदेव के साथ अहमदाबाद से कन्याकुमारी की पैदल यात्रा की जब गुरुदेव बड़े शहरों में बाजार के बीच से गुजरते या जंगलों को पार करते या पहाड़ की चढ़ाई चढ़ते, उस समय मुमुक्षु बहनें गीतों का संगान करती हुई आगे-आगे चलतीं। जब कभी कोई नया गीत प्रारम्भ करती, बहनें भूल जाती, तब सुशीला तत्काल उस गीत को स्वर दे देती। उसे पचासों गीत कंठस्थ थे। कंठस्थ ज्ञान भी पूरा पक्का था।

यात्राकाल में संस्था की बहनें सुबह-शाम समय-समय पर गुरुदेव की उपासना में पहुंच जाती। गुरुदेव भी बहनों को कुछ-न-कुछ पूछते रहते। कभी संस्कृत का श्लोक पूछते। अनेक बहनें संकोचवश बोल नहीं पाती। सुशीला तत्काल उस प्रश्न का उत्तर दे देती। कभी-कभी ऐसा भी होता, किसी को उसका उत्तर नहीं आता, लेकिन वह तत्काल बता देती। एक

दिन बहन विमला ने कहा—आपको इसका उत्तर कैसे आ गया? तब सुशीला ने कहा—मुझे पता नहीं, आता तो नहीं था, लेकिन गुरुदेव के प्रताप से ही सही उत्तर आ गया। पूज्य गुरुदेव की भी मुमुक्षु सुशीला पर अच्छी कृपादृष्टि थी।

गुरुदेव सुशीला के उच्चारण से बहुत सन्तुष्ट थे। एक बार गुरुदेव ने अभिधान चिन्तामणि कोश का एक श्लोक पूछा—सुशीला ने चन्द्रमा के पर्यायवाची 'निशौषधीपति' का उच्चारण अशुद्ध किया। तब गुरुदेव ने विनोद के लहजे में कहा—'अच्छा! तुम भी अशुद्ध बोलना जानती हो।' इस घटना से हम जान सकते हैं कि गुरुदेव को उनके शुद्ध उच्चारण पर कितना विश्वास था।

सुशीला के मधुर और विनम्र व्यवहार के कारण उसका सबके साथ अपनत्व भाव जुड़ा हुआ था। व्यवस्था सम्बन्धी दायित्व से सदा निरपेक्ष रहती। अध्ययन-अध्यापन के कार्यों में ही अपनी शक्ति का नियोजन करती थी। उसकी सोच विधायक थी। बिना प्रयोजन भाषासमिति का प्रयोग नहीं करती थी। साध्वी विमलप्रज्ञाजी ने बताया—'संस्थाकाल में जब हम सामूहिक कार्य करते उस समय परस्पर बातचीत का भी दौर प्रारम्भ हो जाता। बातचीत के दौरान कभी-कभी साधु-साध्वियों की बात भी कर लेते। लेकिन मैंने देखा—मुमुक्षु सुशीला मौन भाव से अपना कार्य करती। न बातों में रस लेती न कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करती। अपना कार्य सम्पन्न कर उठकर चली जाती। उसकी इस विशेषता ने मुझे बहुत प्रभावित किया।'

उसकी सहदीक्षित साध्वी ने बताया—'विद्या ददाति विनयम्' इसका मूर्त्त रूप हमने साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के जीवन में देखा। संस्था में उनकी एक मेधावी छात्रा के रूप में पहचान थी। वक्तृत्वकला में भी दक्ष थी। जब भी वे भाषण बोलती जनता पर एक प्रभाव छोड़ती थी। उनके जीवन में विद्या और विनम्रता दोनों साथ-साथ कदम से कदम मिलाकर चलते थे। उनकी विनम्रता ने उनकी प्रतिभा को और अधिक निखार दिया। वे अपनी बड़ी बहनों के प्रति, अध्यापकों के प्रति तथा व्यवस्थापकों के प्रति अत्यन्त विनम्र थीं। अहंकार तों उनके इर्द-गिर्द भी नहीं था। कोई भी बहन उनके पास आती, अपनी समस्या का समाधान पाकर ही लौटती थी। वे छोटी बहनों का भी सम्मान करती थीं।'

यात्राकाल में गुरु सेवा का पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो जाता। पूज्य गुरुदेव भी बहनों के विकास के लिए अपना अमूल्य समय देते। एक बार गुरुदेव 'मैं क्या हूं' इस पुस्तक की स्वयं पंक्तियां बोलते गए और सुशीला को उसकी व्याख्या करने को कहा। सुशीला ने अपनी योग्यता के अनुसार व्याख्या कर दी। गुरुदेव ने पुनः उसकी विशद व्याख्या कर सबको समझाया। इस प्रकार गुरु शिष्य के विकास के लिए नए-नए उपक्रम करते रहते हैं।

एक बार ऑरियण्टल गार्डन में बहनें गुरुदेव की सेवा में बैठी थीं। संयोजक कल्याणमलजी बरड़िया ने निवेदन किया—'बहनों की शिक्षा गोष्ठी कराएं।' गुरुदेव ने मुस्कान बिखेरते हुए कहा—'सुबह से शाम इनकी व्यवस्थित दिनचर्या है। ये दिनचर्या के अनुसार अपना कार्य करती हैं। गलती करने का समय ही कहां है?' तत्काल सुशीला ने विनम्र निवेदन किया—'गुरुदेव! गलती के लिए अलग से समय नहीं चाहिए। इन्हीं कार्यों में यदा-कदा गलती हो ही जाती है। उन्हीं को सही ढंग से कैसे करें? इसलिए शिक्षा गोष्ठी की कृपा कराएं।' गुरुदेव ने बहन की विनम्र प्रार्थना पर अनुग्रह कर शिक्षागोष्ठी समायोजित की। अमूल्य शिक्षाएं प्रदान कर सबको अनुगृहीत किया।

धैर्य का बांध टूटने लगा

संस्था का समय द्रुतगति से व्यतीत हो रहा था। सुशीला के संस्था प्रविष्टि के बाद लगभग १५० बहनें दीक्षित हो चुकी थीं। दीक्षा की प्रतीक्षा करते-करते उसके धैर्य का बांध टूटने लगा। तब उसने अपने पिताश्री को पत्र लिखा—'पूज्य पिताजी! लगता है पढ़ाई में अधिक नम्बर लाना भी दीक्षा में बाधक बन रहा है।'

तब पिताजी ने प्रत्युत्तर में लिखा—'जहां गुरु की दृष्टि वहां सुख की सृष्टि'। लगता है अभी तक तुम गुरु की दृष्टि नहीं समझ पाई हो। जब तुमने गुरु दृष्टि के महत्त्व को नहीं जाना है तो आगे गुरु-इंगित की आराधना कैसे करोगी? तुम अपनी चिन्ता की चादर गुरु के कंधों पर डाल दो। गुरु सबकी चिन्ता करते हैं।' पिताजी की सचोट शिक्षा से सुशीला को एक बोधपाठ मिल गया।

लोग भी पिताजी से कहते—'सुशीला को संस्था में गए कितने वर्ष

हो गए हैं? क्या बेटी को इतना पढ़ाकर आसमान के पेड़ियां लगानी हैं? दीक्षा की अर्ज क्यों नहीं करते?' उनका एक ही उत्तर होता—'मेरी बेटी में कोई कमी तो है नहीं। न ही गुरुदेव का उसके प्रति अकृपाभाव है। न मुझे कोई जल्दी है। तब मैं निवेदन क्यों करूं? गुरु की जब जहां मर्जी होगी दीक्षा हो जाएगी। यह मेरे सोचने का विषय नहीं है।'

सुशीला समय-समय पर जब गुरुदेव की दृष्टि देखती, तब दीक्षा की अर्ज कर देती। एक बार गुरुदेव ने नवागन्तुक व्यक्तियों को संस्था का परिचय देते हुए कहा—'ये हमारी दो नम्बर की साध्वियां हैं।' अवसर देखकर सुशीला ने निवेदन किया—'गुरुदेव! अब हमें एक नम्बर की साध्वी बनाने की कृपा करें।'

उड़ीसा में एक बार गुरुदेव ने बहनों को समय दिया। सब बहनें पंक्तिबद्ध बैठ गईं लेकिन सुशीला पंक्ति से बाहर रह गई। गुरुदेव ने विनोद के स्वर में कहा—'अब तुम लाइन में नहीं रही हो।' सुशीला ने तत्काल कहा—'तहत् गुरुदेव! अब इस लाइन से आगे ले जाने की कृपा करें।'

प्रतीक्षा की घड़ियां लम्बी होती हैं। कभी-कभी धैर्य का धागा टूटने लगता है। मोमासर में साध्वी अणिमाश्रीजी की दीक्षा हो रही थी। उनसे पहले संस्था में प्रविष्ट होने वाली सुशीला आदि कई बहनें थीं। वे सब संयोजक साहब के पास पहुंचीं और अपनी दीक्षा की प्रार्थना करने के लिए निवेदन किया। बहनों का दीक्षा के लिए बेताब मन रो पड़ा। कल्याणमलजी भी बहनों की बलवती भावना के आगे पिघल गए। उनका मानस भी करुणा से द्रवित हो गया। वे पूज्य गुरुदेव के पास गए। गुरुदेव को सारी घटना से अवगत कराया।

मध्यान्ह में गुरुदेव ने गोष्ठी आहूत की। बहनों को संबोधित करते हुए कहा—'हम तुम्हारे ही विकास के लिए नए-नए आयाम खोल रहे हैं। तुम्हारे हित के लिए चिन्तन कर रहे हैं। तुम लोग दीक्षा की जल्दी कर रही हो। तुम लोग कह दो—हमें अपना विकास नहीं करना है। मैं आज ही दीक्षा दे सकता हूं। फिर यह मत कहना हमें विकास का अवसर नहीं मिला।' गुरुदेव ने ऐसे शिक्षामृत की वर्षा की कि सबका मनस्ताप धुल गया। फिर कभी अधैर्य का परिचय नहीं दिया।

निर्वाण शताब्दी पर पूज्यप्रवर का चातुर्मास दिल्ली में था। गुरुदेव की इच्छा थी इस ऐतिहासिक अवसर पर एक नई श्रेणी का शुभारम्भ किया जाए। जो साधु और श्रावक के बीच सेतु का काम कर सके। साधु की सीमाएं उसमें बाधक न बने तथा श्रावक की तरह खुलावट भी न रहे। इस तीसरी श्रेणी की स्थापना के लिए अनेक गोष्ठियां समायोजित हुईं। सर्वांगीण चिन्तन-मन्थन चला। पूज्यप्रवर सुशीला आदि कुछ प्रबुद्ध बहनों को सबसे पहले इस श्रेणी में समायोजित करना चाहते थे। इस दृष्टि से दीक्षित होनेवाली मुमुक्षु बहनों से बात की गई। लेकिन कोई भी काम काल लब्धि के परिपाक से ही संभव होता है।

मुमुक्षु सुशीला से भी पूछा गया तो उसने कहा–'जैसी गुरुदेव की दृष्टि होगी, मैं वैसे ही रहने के लिए प्रस्तुत हूं।' पिताजी से बात की गई, वे भी समर्पित थे। यानि उसका समर्पण भाव प्रारम्भ से ही प्रशस्य रहा है।

संन्यास की दिशा में प्रस्थान

भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी का पुण्य अवसर, लाल किले में विशाल जनमेदिनी। ३-४ किलोमीटर लम्बे जुलूस के साथ दीक्षार्थिनी बहनें पांडाल में पहुंचीं। जयनारों से पांडाल गूंज उठा। सुशीला का भाषण भी प्रभावोत्पादक था। उसने कहा–'भाग्य की डालियां विकसाने वाला समय आ गया है। अमृत की प्यालियां पिलाने वाला समय आ गया है। गुरुदेव की शरण में सब कुछ उत्साह और साहस से पार करूंगी। पथ के कांटों को मुस्कराकर झेलूंगी।'

पूज्य गुरुदेव ने पट्ट पर खड़े होकर आठ बहनों और दो भाइयों को जैन भागवती दीक्षा प्रदान की। सुशीला साध्वी सिद्धप्रज्ञा बन गई। कार्तिक शुक्ला छठ के दिन सुशीला ने अपने नए जीवन में प्रवेश किया। वर्षों से संजोया स्वप्न साकार हुआ।

दीक्षा के बाद गुरुदेव लाल किले से प्रस्थान कर अणुव्रत भवन में पधारे। नवदीक्षित साधु-साध्वियां आगे-आगे चल रही थीं। जैसे ही अणुव्रत भवन में प्रवेश किया, मुझे (यशोधराजी) और सिद्धप्रज्ञाजी–दोनों बहनों

को साथ देखकर सेवाभावीजी अत्यन्त हर्ष-विभोर होकर बोले—'आज ब्राह्मी सुन्दरी का जोड़ा आया है। ये हमारी पड़ोसन हैं। बहुत भली हैं।'

असाता वेदनीय का उदय

जिस दिन दीक्षा स्वीकार की, उसी दिन पैर में कांटा चुभ गया। कांटा बहुत गहरा था। सहनशक्ति के कारण उसने अभिव्यक्ति नहीं दी। जिससे कांटा भीतर ही भीतर पक गया। पैर में रस्सी हो गई। इसी से पैर में दर्द का सिलसिला चालू हो गया।

चातुर्मास सम्पन्न होते ही विहार की तैयारियां होने लगी। पूज्य गुरुदेव और मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) का यात्रा पथ अलग-अलग था। गुरुदेव का यात्रापथ लम्बा था। कुछ साधु-साध्वियां छोटे मार्ग से जा रहे थे। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के पैरों का दर्द बढ़ जाने के कारण उन्हें छोटे मार्ग से जाने वाली साध्वियों के साथ भेजा।

पैरों में भयंकर वेदना। चलने में कठिनाई। उन्हें चलते देखकर हर व्यक्ति का मन द्रवित हो जाता। एक दिन मुनिश्री (आचार्य महाप्रज्ञजी) ने उन्हें चलते देखकर कहा—'तुम बहुत कठिनाई से चल रही हो। लो मेरा यह गेड़िया और पट्टा ले लो।' उन्होंने मना किया। लेकिन करुणार्द्र मानस ने उनके निषेध को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'अधिक कठिनाई हो तो कहीं रुककर थोड़े दिन विश्राम करके फिर विहार कर देना।' लेकिन उनका मनोबल बहुत मजबूत था। इसलिए शारीरिक कठिनाई उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकी।

जब गुरुदेव के दर्शन किए तब गुरुदेव ने फरमाया—'वृद्धत्वं जरसा बिना'। मुनिश्री (आचार्य महाप्रज्ञजी) ने फरमाया—'सिद्धप्रज्ञाजी बहुत सहिष्णु और मनोबली हैं। इन्हें एक सीढ़ी चढ़ने में भी अत्यधिक कष्ट होता है। इसलिए एक सीढ़ी चढ़ने की अपेक्षा सीधा चलना इनके लिए आसान है। लेकिन वेदना में समभाव है। धीरे-धीरे चलकर मंजिल तक पहुंच जाती है।'

विहार के समय जो भी वृद्ध या धीरे चलने वाली साध्वियां विहार करतीं, उनके साथ ही विहार कर देती। जिससे महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी को

अलग से व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। यह नैसर्गिक विशेषता थी—उन्होंने अपने लिए कभी कोई अतिरिक्त व्यवस्था की मांग नहीं की। इस प्रकार वेदना की स्थिति में भी ४०० कि.मी. का रास्ता पारकर अपनी मंजिल पर पहुंची।

संकल्प की पूर्णाहुति

कभी-कभी हम दोनों बहनें आचार्यप्रवर के पधारने के बाद देर से पहुंचतीं तो पूज्यप्रवर फरमाते—'चलने में इसे इतना कष्ट होता है तो इसे इतना क्यों चलाती हो?' मैंने निवेदन किया—'गुरुदेव, आपकी कृपा से रास्ता कट जाता है। पीछे रह जाएंगी तो मर्यादा महोत्सव पर पहुंचना कठिन हो जाएगा।' गुरुदेव ने कहा—'छोटी उम्र में ही पैरों में दर्द आ गया है।' तब मैंने उनके संकल्प की चर्चा करते हुए कहा—गुरुदेव, जब यह सात-आठ वर्ष की थी तभी पैरों में भयंकर दर्द हो गया। अपने स्थान से भी उठना कठिन हो गया। ५० इंजेक्शन लगे किन्तु दर्द से राहत नहीं मिली। मैंने घोर तपस्वी मुनि हुलासमलजी स्वामी की घटना का जिक्र करते हुए कहा—उस घटना को सुनकर इन्होंने भी संकल्प कर लिया यदि इस दर्द से मुक्त हो जाऊंगी तो दीक्षा लूंगी। संकल्पशक्ति का चमत्कार हुआ। पैरों का दर्द ठीक हो गया। संस्था में सात वर्ष रही। गुरुदेव के साथ अहमदाबाद से कन्याकुमारी की पदयात्रा की। स्वस्थ रही, दर्द ने कोई अवरोध पैदा नहीं किया। लेकिन दीक्षा लेते ही यह दर्द फिर उभर गया है। पूज्य गुरुदेव ने विनोद के स्वर में कहा—संकल्प दीक्षा लेने तक का था। 'ठीक हो जाऊंगी तो दीक्षा ले लूंगी।' अब दीक्षा हो गई है तो संकल्प भी पूरा हो गया।'

बहिर्विहार की वन्दना

डूंगरगढ़ महोत्सव के अवसर पर नवदीक्षित साध्वियों को अलग-अलग ग्रुप में वन्दना कराई। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को साध्वीश्री मनसुखांजी के साथ वन्दना कराई। भाईजी महाराज ने गुरुदेव को निवेदन किया—गुरुदेव यह तो अध्ययनशील साध्वी है। इसे अध्ययन का अवसर दिराएं। डूंगरगढ़ से विहार हुआ। हम सभी लाडनूं पहुंच गए। वहां सुजानगढ़ के प्रसिद्ध डॉ. व्यास को दिखाया। मैंने डॉ. व्यास से पूछा—इन्हें विशेष क्या ध्यान रखना

है? डॉक्टर ने कहा—इनके लिए चलना ठीक नहीं है। मैंने कहा—डॉक्टर साहब! चलना तो हमारा जीवनव्रत है। तब डॉक्टर ने विनोद के लहजे में कहा—यह जैनविश्वभारती क्या काम आएगी? डॉक्टर ने गुरुदेव के दर्शन किए और सारी स्थिति की जानकारी दी।

शिक्षाकेन्द्र की स्थापना

शिक्षाकेन्द्र की स्थापना का चिन्तन तो चल ही रहा था। लेकिन उसकी क्रियान्विति नहीं हुई थी। गुरुदेव साध्वियों के स्थान पर पधारे। मुझे याद किया। मैं वन्दना की मुद्रा में गुरुदेव के सम्मुख बैठ गई। गुरुदेव ने कहा—बोलो! सिद्धप्रज्ञा के बारे में क्या सोचें? मैंने विनम्र निवेदन किया—गुरुदेव! यह आपकी महती कृपा है जो आप मुझसे पूछ रहे हैं। इसकी अपेक्षा नहीं है। गुरु जो करेंगे वही हमारे लिए हितकारी और कल्याणकारी होगा। इनके विषय में सोचना मेरी अनधिकृत चेष्टा होगी।

गुरुदेव ने ईशानकोण की ओर मुखारविन्द करके मुझे निर्देश दिया—शिक्षाकेन्द्र की वन्दना करो। शिक्षाकेन्द्र की व्यवस्थापिका के रूप में तुम्हारी नियुक्ति कर रहे हैं। अकस्मात् अकल्पित यह निर्देश पाकर मैं अवाक् रह गई।

गुरुदेव ने फरमाया—'सिद्धप्रज्ञा को मैंने साध्वी मनसुखांजी के साथ भेजा। सिद्धप्रज्ञा ने तो इसे सहर्ष स्वीकार किया ही, यशोधरा और इनके पारिवारिकजनों ने भी निवेदन नहीं किया—इसे क्यों भेज रहे हैं? पांवों में इतना दर्द है। समर्पित परिवार है। गुरुदृष्टि ही सर्वोपरि है। इनके समर्पण को देखकर मैं सिद्धप्रज्ञा को शिक्षाकेन्द्र में रख रहा हूं। यह यहां रहकर अध्ययन तो करेगी ही, साथ में स्वास्थ्य लाभ भी। अभी इसके चलने में भी कठिनाई है, इसलिए विश्राम भी हो जाएगा और चिकित्सा भी।' शिष्य जिस दिन गुरु-चरणों में अपना समर्पण करता है, उसी दिन से चिन्ता की चादर गुरु के कंधों पर डालकर निश्चिन्तता का जीवन जीता है। उसी का एक उदाहरण है—साध्वी सिद्धप्रज्ञा।

पूज्यप्रवर ने २०३१ चैत्र कृष्णा नवमी को शिक्षा केन्द्र लाडनूं के नाम एक संदेश लिखा...

शिक्षाकेन्द्र लाडनूं!

इस वर्ष हमने लाडनूं में एक शिक्षाकेन्द्र स्थापित किया है। साध्वियां उसमें रहकर आवश्यक शिक्षा प्राप्त करेंगी। प्रथम बार शिक्षा केन्द्र की संयोजिका साध्वी यशोधरा को नियुक्त किया है। सहयोगिनी के रूप में साध्वी सरोजकुमारी रहेगी। साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा, निर्वाणश्री, वर्धमानश्री को पहली बार शिक्षार्थिनी के रूप में रखा है।

शिवाम्बु चिकित्सा

शिक्षाकेन्द्र में रहकर अध्ययन के साथ चिकित्सा का भी क्रम चला। पैरों के दर्द का उपचार चल रहा था। अचानक खांसी का प्रकोप बढ़ बया। मैं शिवाम्बु चिकित्सा का प्रयोग कर चुकी थी। मुझे उसकी विधि का ज्ञान था। मैंने उनको यह प्रयोग करने को कहा—उन्होंने तत्काल इसे स्वीकार कर लिया।

तीन दिन तक मूत्रपान और छन्ने के पानी का प्रयोग कराया। पूरे शरीर पर उसकी मालिश की। तीन दिनों में बहुत लाभ हुआ। खांसी से बहुत राहत मिली। फिर हल्के पथ्य पर रखा। एक समस्या का समाधान हुआ। दूसरी समस्या उभर आई। पूरे शरीर पर फुन्सियां उभर गई। सारा शरीर लाल हो गया। लेकिन उन्होंने समभाव से सहन किया।

शिक्षाकेन्द्र में बी.ए. के नए पाठ्यक्रम की परीक्षा दी। वह पढ़ने में तेज थी। इसलिए हर कक्षा में सदा ही प्रथम स्थान प्राप्त किया। उदारता के साथ अपने ज्ञान का दान किया। साथ में रहने वालों को कभी यह अनुभव नहीं हुआ कि इन्हें अपने ज्ञान पर अहंकार है।

आगमकार्य में नियुक्ति

सन् १९७९ का प्रसंग है। उस समय पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री तुलसी पंजाब की यात्रा पर थे। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ लाडनूं में विराज रहे थे। उन्होंने शिक्षाकेन्द्र की साध्वियों की तथा कुछ चयनित मुमुक्षु बहनों की संगोष्ठी बुलाई। युवाचार्यप्रवर ने फरमाया—अभी तुम लोग स्नातकोत्तर द्वितीय वर्ष का अध्ययन कर रही हो। तुम लोग अध्ययन करके डिग्री प्राप्त करना

चाहती हो या आगमकार्य करके ठोस ज्ञान करना चाहती हो? सबने अपने संकल्प को दोहराते हुए कहा—नहीं, हम ठोस ज्ञान करना चाहती हैं।

महावीर जयन्ती के दिन आगम कार्य हेतु पांच मण्डलियां बनाई गईं। उन मण्डलियों का नेतृत्व करने वाली साध्वियां थीं—

साध्वी निर्देशिका	**ग्रन्थ**
साध्वी कनकश्रीजी	निशीथ
साध्वी यशोधराजी	व्यवहार
साध्वी अशोकश्रीजी	आचारांग, दशाश्रुतस्कन्ध, पंचाशक, सूर्यप्रज्ञप्ति।
साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी	सूत्रकृतांग (द्वितीय श्रुतस्कन्ध) स्थानांग, पिण्डनिर्युक्ति।
साध्वी निर्वाणश्रीजी	आवश्यक (प्रथम भाग) सूत्रकृतांग (प्रथम श्रुतस्कन्ध)

प्रत्येक मण्डली के साथ दो-तीन सहयोगी के रूप में मुमुक्षु बहनों को जोड़ा गया। इस कार्य की बहुत लम्बी योजना थी। अनेक बिन्दुओं का संकलन करना था। कार्य द्रुतगति से चला। कार्य के लिए कार्ड सिस्टम था। कार्डों को रखने के लिए अलग-अलग काष्ठ पेटियां थीं। सभी ने निष्ठा के साथ अपने-अपने कार्य को संभाला। हजारों कार्ड बन गए। लेकिन निष्पत्ति के रूप में कार्य सामने नहीं आया। व्यवस्था में भी परिवर्तन आ गया जिससे कार्य की गति मन्द हो गई।

निरुक्तकोश का सम्पादन

विक्रम संवत् २०४०। नाथद्वारा की ऐतिहासिक भूमि। मर्यादा महोत्सव की सम्पन्नता। एक आगम गोष्ठी का आयोजन हुआ जिसका उद्देश्य था—आगम कार्य को पुनः गति देना। इसलिए मुनि दुलहराजजी को तथा साध्वी कनकश्रीजी के निर्देशन में कुछ साध्वियों को लाडनूं भेजा। लाडनूं जाकर मुनि श्री दुलहराजजी ने आगम कार्य का अवलोकन कर कहा—अब कार्य समेटने की अपेक्षा है। कार्य करने वाली साध्वियों और समणियों की संगोष्ठी

की। उसमें निरुक्त कोश का दायित्व साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी और निर्वाणश्रीजी को दिया गया तथा देशीशब्दकोश का दायित्व साध्वी अशोकश्रीजी और साध्वी विमलप्रज्ञाजी को दिया गया।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी और साध्वी निर्वाणश्रीजी ने मुनि श्री दुलहराजजी के निर्देशन में अपने श्रम और निष्ठा के साथ इस कार्य को पूर्णता तक पहुंचा दिया। एक दिन निरुक्त कोष छपकर पाठकों के हाथों में पहुंच गया।

देशीशब्दकोश में महत्त्वपूर्ण योगदान

देशीशब्दकोश का दायित्व साध्वी अशोकश्रीजी और साध्वी विमलप्रज्ञाजी को दिया हुआ था। इन दोनों ने इस कार्य को किया लेकिन कार्य सम्पन्न नहीं हुआ। कुछ अनिवार्य कारणों से इस कार्य में इनकी संलग्नता व्यवहित रही। तब साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। उन्होंने बड़े उत्साह और निष्ठा के साथ इस कार्य को सम्पादित किया। शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद वह निरन्तर इस कार्य में लगी रहती। उनके श्रम ने इस कार्य को शिखर तक पहुंचा दिया। आगमकार्य करते-करते उनकी प्रज्ञा में निखार आता गया। निरन्तर आगमकार्य के अवसर उपलब्ध होते गए।

श्रीभिक्षुआगम विषयकोश की ओर प्रस्थान

योगक्षेम वर्ष सम्पन्न हुआ। सन् १९९० में आगमकार्य के अन्तर्गत सभी आगमों के विषयकोश की योजना बनाई गई। डॉ. सत्यरंजन बनर्जी के समक्ष इस कोश की चर्चा की गई। उन्होंने इस उपक्रम की सराहना करते हुए कहा—इसकी क्रियान्विति के लिए अनेक व्यक्तियों की अपेक्षा है।

पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री तुलसी ने महती अनुकम्पा कर इस कार्य के लिए साध्वी विमलप्रज्ञाजी और साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को नियुक्त किया। साध्वी विमलप्रज्ञाजी ने आगमविषयकोश के सन्दर्भ में बताया—"हम लगभग दो वर्ष तक कार्य करती रहीं। अनेक फाइलें तैयार कर लीं, लेकिन सम्यक् अवगति के बिना भटकाव की स्थिति बनी रही।

सन् १९९४ में सुजानगढ़ महोत्सव के बाद पूज्य गुरुदेव ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। हम दोनों को आगम मनीषी मुनिश्री दुलहराजजी

के निर्देशन में कार्य हेतु लाडनूं रहने का निर्देश दिया। डॉ. बनर्जी ने हमें कोश की कार्यपद्धति बताई। तदनुसार हमने अपना कार्य पुनः प्रारम्भ किया।

पूज्यप्रवर का निर्देश था कि सभी आगमों का कार्य एक साथ करने से बहुत लम्बा हो जाएगा, इसलिए पहले पांच आगम १. दसवैकालिक, २. उत्तराध्ययन, ३. अनुयोगद्वार, ४. नन्दी, ५. आवश्यक पर काम करना है। हमने मुनिश्री के निर्देशन में कार्य प्रारम्भ किया। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का प्राकृत और संस्कृत भाषा पर अधिकार था। वे हर बात को गहराई से पकड़ती थी। जब तक किसी भी शब्द का अर्थ उनके जमता नहीं था, तब तक वह अन्य ग्रन्थों को देखती रहती थी। उनकी प्रज्ञा निर्मल थी इसलिए कार्य ने गति पकड़ ली। अनुवाद में उनका अच्छा क्षयोपशम था। उनके अनुवाद को देखकर मुनिश्री फरमाते—अनुवाद तो हमें सिद्धप्रज्ञाजी से सीखना पड़ेगा। इस कोश के सम्पादन में उनकी प्रज्ञा, श्रम व निष्ठा बोल रही है। लेकिन मुझे यह कभी अहसास नहीं कराया कि मैं अधिक काम कर रही हूं। मुझको सदा अपने बराबर माना।

जब हम शिक्षाकेन्द्र में कार्य हेतु लाडनूं में थीं। उस समय समणी चिन्मयप्रज्ञाजी आदि समणीजी ने अनेक बार कहा—साथी हो तो आप जैसा। जब हम आप दोनों को देखती हैं तो दसवैकालिक चूलिका की वह गाथा स्मृतिपटल पर उभर आती है—

न या लभेज्जा निउणं सहायं,
गुणाहियं वा गुणओ समं वा।
एक्कोवि पावाइं विवज्जयंतो,
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

अपने तुल्य या अपने से गुणाधिक साथी न मिले तो मुनि पापकर्म का वर्जन करता हुआ काम भोगों से अनासक्त अकेला ही विहरण करे।

मैं अपना सौभाग्य मानती हूं कि मुझे गुणाधिक साथी के साथ काम करने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। हमने १९९४ में इस कार्य का शुभारम्भ किया और १९९७ में लाडनूं में इस कार्य को सम्पन्न कर 'श्रीभिक्षुआगम विषयकोश' प्रथम भाग श्रद्धेय गुरुदेव श्रीतुलसी के कर-कमलों में समर्पित कर आत्मतोष और अतिरिक्त आह्लाद का अनुभव किया।"

श्रीभिक्षु आगमविषयकोश (द्वितीय भाग)

"प्रथमभाग पूज्यप्रवर के करकमलों में समर्पित करने के बाद दो वर्ष तक इस कार्य पर विराम लग गया। अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त डॉ. नथमल टांटिया एवं सत्यरंजन बनर्जी द्वारा प्रेरित करने पर प्रज्ञापुरुष आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की अनुज्ञा से चार छेदसूत्र—१. निशीथ, २. व्यवहार, ३. बृहत्कल्प, ४. दशाश्रुतस्कन्ध और इनके व्याख्या साहित्य पर कार्य प्रारम्भ किया।

हमारी श्रुतयात्रा पुनः प्रारम्भ हुई। यह यात्रा उस यात्रा की अपेक्षा अधिक जोखिमभरी थी। क्योंकि इस बार हमें छेदसूत्रों के लघुतम शब्दशरीर से विराट् अर्थ तक पहुंचना था। उत्सर्ग और अपवाद की व्यापक सीमा रेखाओं के मर्म को समझकर ग्राह्य का संग्रहण करना, उन्हें विषयों में आबद्ध करना दुरूह कार्य था। गुरुदेव का वात्सल्यभरा अनुग्रह, सक्रिय मार्गदर्शन तथा साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी की निर्मल प्रज्ञा से ऊबड़-खाबड़ बीहड़ मार्ग भी राजमार्ग बन गया। अंधेरा ढल गया। प्रकाश का अवतरण हो गया।

समय-समय पर पूज्यप्रवरों के मंगल संदेशों से नई प्राणधारा का संचार हो जाता, कार्य की गति में त्वरा आ जाती। एक बार भाई कमलेशजी ने लाडनूं के संवाद सुनाते हुए महाश्रमणीजी से निवेदन किया महाश्रमणीजी! साध्वी विमलप्रज्ञाजी और साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी पूरी तन्मयता से आगमकोश का काम कर रही हैं। साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने फरमाया—उनकी अध्यवसायशीलता के कारण ही उनको ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य में नियोजित किया गया है।

गणाधिपति गुरुदेव ने सुधर्मा सभा में एक बार फरमाया—'साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा का योगक्षेमवर्ष अभी तक पूरा नहीं हुआ। सिद्धप्रज्ञा आगमकोश का काम कर रही है। बहुत कमजोर है, अस्वस्थ रहती है। आगम काम के लिए ही जी रही है।"

प्रज्ञापुरुष युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने प्रोत्साहित करते हुए एक संदेश में लिखा—

साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा!

तुम लोग आगमकोश का काम बड़ी तन्मयता से कर रही हो, यह बहुत अच्छा संवाद है। कार्य के प्रति समर्पण होना सफलता का पहला चरण है। कार्य निरन्तर आगे बढ़े। अध्ययन करनेवाली साध्वियां अध्ययन

में लीन रहें, साथ-साथ आगमकार्य में भी सहयोग करें।

श्रीभिक्षु आगमकोश का कार्य व्यवस्थित और त्वरित गति से चल रहा था। अकस्मात एक मोड़ आया। साध्वी विमलप्रज्ञाजी युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के साथ यात्रा में यात्रायित हो गई। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी अस्वस्थता के कारण लाडनूं में सेवाकेन्द्र 'चेइयं' में ही रही। लेकिन कार्य अपनी गति से चलता रहा। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने पूरी निष्ठा से इस कार्य को संभाला। इसलिए साध्वी विमलप्रज्ञाजी निश्चिन्त रही। पूज्यप्रवर ने महती अनुकम्पा कर मुम्बई से अपना मंगल संदेश प्रदान किया—

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

तुम्हारी प्रज्ञा सिद्ध है, स्थित है, इसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। शारीरिक स्थिति की प्रतिकूलता होने पर भी प्रसन्नता और सहजता का अनुभव करती हो, वह स्वतः सिद्ध प्रमाण है। श्रुत की आराधना में तुम्हारी शक्ति का नियोजन सम्यक् प्रकार से होता रहे।

स्वास्थ्य के लिए यह संकल्प करती रहो। शरीर में तीन शक्ति के स्रोत हैं, उन पर ध्वनि चिकित्सा का प्रयोग करो—

१. शक्ति केन्द्र पर लं लं का दो मिनट उच्चारण करो।

२. तैजस केन्द्र पर रं रं का दो मिनट उच्चारण करो।

३. विशुद्धिकेन्द्र पर ह्रं ह्रं (ह्रीं) का पांच मिनट उच्चारण करो।

इससे काम करने की शक्ति बढ़ेगी और स्वास्थ्य भी अनुकूल रहेगा। तुम्हारा संकल्पबल निरन्तर बढ़ता रहे।

साध्वी सिद्धप्रज्ञा! आगमकोश का कार्य विचित्र प्रणाली से चल रहा है। साध्वी विमलप्रज्ञा तुम्हारे साथ जुड़ी है जो यहां है। तुम लाडनूं में हो, समणी उज्ज्वलप्रज्ञा कभी यहां तो कभी वहां—यह विचित्र संयोग है। सब पूरी शक्ति के साथ इस कार्य को व्यवस्थित ढंग से चला रही हो। मुनि दुलहराजजी का समय-समय पर योग मिल रहा है। श्रीभिक्षु आगमकोश (भाग-१) पूरे जैन समाज में प्रतिष्ठित हुआ है। भाग-२ भी जैन समाज में प्रतिष्ठित होगा।

मुम्बई कांदिवली — **आचार्य महाप्रज्ञ**

२३ फरवरी २००३

इस प्रकार समय-समय पर गुरु-कृपा प्रसाद की टॉनिक उन्हें मिलती रही। संकल्पशक्ति और कर्मजाशक्ति से जीवनीशक्ति वृद्धिंगत होती रही। साध्वी विमलप्रज्ञाजी का योग न होने पर भी एकलकार्य की दिशा में गति में श्लथता नहीं आई प्रत्युत शारीरिक रुग्णता में भी निरोगता का अनुभव करती हुई एकनिष्ठ हो आगमसेवा में जुट गई। जिस निष्ठा के साथ वह आगमकार्य कर रही थी, वह सुखद आश्चर्य ही कहा जा सकता है। इधर विमलप्रज्ञाजी—दोनों ओर कार्य चल रहा था। बीदासर चातुर्मास में तो पूज्यप्रवर ने आगमकार्य की दृष्टि से उन्हें बीदासर आने का निर्देश दिया। सौभाग्य से गुरु-चरणों में कार्य करने का सुअवसर उपलब्ध हुआ।

आखिर सपने नहीं संकल्प पूरे होते हैं। १६ फरवरी २००५ माघशुक्ला अष्टमी को सुधर्मासभा में श्रुतधर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के करकमलों में साध्वीद्वय ने सप्रश्रय सभक्ति श्रुतभक्ति का प्रतीक द्वितीयपुष्प 'श्रीभिक्षु आगम विषयकोश दूसरा भाग' समर्पित कर अपूर्व आत्मतोष का अनुभव किया।

तीर्थवत्सल आचार्यप्रवर ने साध्वीद्वय की आगमनिष्ठा का उल्लेख करते हुए वर्धापित किया। 'निर्मलप्रज्ञा' सिद्धप्रज्ञा संबोधन से साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को संबोधित किया।

कृतज्ञता पत्र

अप्पुस्सुए! बहुस्सुए! अबहिल्लेसे! अप्पकिलेसे! जिइंदिए! इरियासमिए! खमासमणभन्ते! कल्लाणमित्ते!

वंदामि...पज्जुवासामि।

परम दयाल! परम गवाल! परम कृपाल!

ऐसा अक्षर मंत्र प्रदान करें कि परम सहिष्णु बन सकूं। ऐसी आशीष दें कि परम पुरुषार्थ जगा सकूं।

महाभाग!

मेरा महाभाग्य कि आपने अमूल्य मौका दिया।

कृतज्ञोस्मि...कोटिशः अनुगृहीतोस्मि...।

महामहिम गणाधिपति पूज्य गुरुदेव!

एवं तीर्थवत्सला महाश्रमणी का महान् अवाच्य अनुग्रह।

पूज्या साध्वियों का परम अनन्य सहयोग, सद्भाव सहानुभूति। साध्वीश्री विमलप्रज्ञाजी का निष्कारण करुणाभाव। सबकी आत्मीयता... पुनः पुनः कृतज्ञास्मि...

• बढ़िया क्वालिटी के दो कदम भी बढ़ा सकूं—इतनी सी शक्ति मुझमें नहीं। यह तो महान गुरुशक्ति का ही प्रताप है कि आगम-पद-यात्रा में निरंतर कदम बढ़ रहे हैं।

अनृगृहीतास्मि...।

• हार्ट या उसके आस-पास होने वाले दर्द की भयंकरता कई बार यह सोचने को विवश कर देती है कि कम से कम एक खंड का काम तो पूरा कर लूं। कहीं बीच में न रह जाये। काम तो पूरा करने वाले बहुत हैं—चिंता की कोई बात ही नहीं है, पर मैं तो अधूरी रह जाऊंगी न।

• दवा के संदर्भ में कभी कभार धर्म संकट की-सी स्थिति पैदा हो जाती है। वह न हो, ऐसा वरदान दें।

• आंतरिक पवित्रता बढ़े और दो चार संकल्प (नवकारसी, सविधि प्रतिक्रमण...) अंतिम दिन तक निभाती रहूं... ऐसे आशीर्वाद के अनुग्रह की मंगलभावना लिए प्रणत है—

सुजानगढ़ मर्यादा महोत्सव **सिद्धा**

२२.२.०४

महाज्योति त्रिमूर्त्ते!

आपकी असीम अनुकम्पा, अन्तहीन अनुग्रह से संयमयात्रा निर्बाध चलती रहे। योगक्षेम का पथ प्रशस्त होता रहे। ये चरण पल-पल उस पर बढ़ते रहें। नासमझी, विवेकाल्पता, अनुभव की अपरिपक्वता, विस्मृति आदि के कारण पग-पग पर होने वाली भूलों के लिए क्षमा चाहती हूं।

काम को किनारे तक पहुंचाने की मेरी हिम्मत कहां? सहभागी, सहयोगी निमित्त बनने का सौभाग्य अवसर प्रदान किया—बहुकृतज्ञास्मि।

'योजकस्तत्र दुर्लभः'—दुर्लभ योजकों का योग सुलभ हुआ—बड़े भाग्य

की बात है। मुनिश्री की सूझ-बूझ, ज्योतित्रय की अनुपम अनुकम्पा से यह पावस-प्रवास बड़ा गुणकारी रहा। वर्षों से अधूरा एक काम पूरा हुआ। श्रुतयात्रा का सातत्य रहा। ऊर्जाकेन्द्र से ऊर्जा अणु उपलब्ध होते रहे। पूरी निश्चिंतता। परम प्रसन्नता। जो कुछ सीखा है उससे अधिक सीखने के अवसर मिलते रहें। सेवाकेन्द्र की अपूर्व सहानुभूति, सहयोग रहा।

कोटिशः कृतज्ञता! नमन! भावप्रणति!

चेइयं सेवाकेन्द्र, लाडनूं
कार्तिक शुक्ला ६, संवत् २०४४

आयारचूला का अनुवाद

आयारचूला के अनुवाद का काम पूज्यप्रवर ने अनुग्रह कर मुझे दिया। मुझे सहयोग की अपेक्षा थी। पूज्य गुरुदेव के निर्देश से साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी मेरे साथ सहर्ष जुड़ गई।

मुनिश्री हीरालालजी चाहते थे कि इसके अनुवाद का कार्य शीघ्र हो। जब उन्हें पता चला साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी इस कार्य में जुड़ गई हैं। तब उन्होंने विश्वास के स्वर में कहा–अब काम जल्दी पूरा हो जाएगा।

सौभाग्य से उस वर्ष लाडनूं सेवाकेन्द्र में मेरी नियुक्ति हो गई। जिससे कार्य करने की सुविधा हो गई। उनके साथ बैठकर कार्य करने में आनन्द का अनुभव तो हुआ ही, साथ ही उनकी कार्यक्षमता को निकटता से जानने का अवसर मिला। शारीरिक अस्वास्थ्य के होने पर भी उनके शरीर में आलस्य नहीं था। जब किसी शब्द या प्रसंग का सम्यक् ज्ञान नहीं होता तब वे तत्काल उठकर कोश, ग्रन्थ उठाकर ले आती। जब तक सही अर्थ प्रमाणित न हो जाए चैन नहीं पड़ता था। मुझे लगता जैसे यह पुरुषार्थ की प्रतिमा है। 'आज का काम आज' यह जीवनसूत्र था। उनकी तन्मयता, तत्परता, एकाग्रता, अध्यवसायशीलता और कार्यनिष्ठा ने आयारचूला के अनुवाद को पूर्णता तक पहुंचा दिया।

जैनपारिभाषिक शब्दकोश में योगदान

जैन पारिभाषिक शब्दकोश का कार्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की मंगल

सन्निधि में चल रहा था। पूज्यप्रवर ही सारी परिभाषाएं लिखवा रहे थे। मुख्यनियोजिकाजी प्रारम्भ से ही इस कार्य में संलग्न थी। उनका श्रम और निष्ठा इसके साथ जुड़ी हुई थी। यात्रा आदि कठिनाइयों के कारण इसका व्यवस्थित रूप नहीं बन पाया था। उन्होंने इस कार्य को साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के पास भेजा। उन्होंने इसे व्यवस्थित रूप दिया। पूरे कोश के कार्डों को बहुत गहराई से पढ़ा। जहां भी अर्थ नहीं जचता, तत्काल प्रश्नवाचक चिन्ह लगाकर पूज्यवर के पास प्रेषित कर देती। पूज्यप्रवर उनके प्रश्नचिन्हों को देखकर फरमाते—सिद्धप्रज्ञा बहुत गहराई से देखती है। कोश को व्यवस्थित रूप देने के बाद पूज्यप्रवर ने संदेश में लिखा—

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

तुम्हारा स्वास्थ्य स्वस्थ होगा। तुम आगम कार्य में संलग्न रही हो और आज भी कर रही हो। शरीर से दुर्बल हो पर मनोबल खूब अधिक है। इसलिए काम चलता रहे। समणी मुदितप्रज्ञा वहां आ रही है। जैन पारिभाषिक शब्दकोश के प्रूफ संशोधन आदि में तुम्हारा सहयोग मिलता रहेगा।

अध्यात्म साधना केन्द्र, दिल्ली **आचार्य महाप्रज्ञ**
१२-११-२००५

२३ जुलाई २००६ गुरुवार को जैन विश्वभारती लाडनूं सुधर्मासभा में जैनपारिभाषिक शब्दकोश का लोकार्पण हुआ तब परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने फरमाया—

जैनपारिभाषिक शब्दकोश में साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का भी श्रम बोल रहा है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी शरीर से अस्वस्थ है किन्तु मन से स्वस्थ है। एक दुबली पतली साध्वी ने जो श्रम किया है, वह साधुवाद के योग्य है।

संस्कृत काव्य के संपादन में सहयोग

श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को संदेश दिया—

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

मुख्यनियोजिका विश्रुतविभा तुम्हारे लिए हमारे द्वारा रचित कुछ संस्कृत कृतियां भेज रही हैं। तुम उन्हें समीचीन रूप में व्यवस्थित कर सुसंपादित कर लौटाओ।

स्वास्थ्य की दुर्बलता की स्थिति में भी तुम्हारा मनोबल बहुत बढ़ा हुआ है। यह मनोबल और बढ़ता रहे।

जयपुर आचार्य महाप्रज्ञ

८-६-२००८

पूज्यप्रवर के इस निर्देश से स्पष्ट है कि उनकी संस्कृत कितनी परिष्कृत थी। पूज्यप्रवर को उनके ज्ञानगाम्भीर्य पर कितना विश्वास था।

३० नवम्बर २०१० श्रीडूंगरगढ़ में जब आचार्यप्रवर की इस महनीय कृति 'प्रकृति विहार' का लोकार्पण हुआ तब श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी ने फरमाया—'साध्वी सिद्धप्रज्ञा प्रतिभाशाली साध्वी है।'

एक बार साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने अपने संदेश में लिखा—'सिद्धप्रज्ञाजी ने संस्कृतश्लोक 'भावविंशिका' लिखे, वे पसन्द आए। समय-समय पर संस्कृत में लिखने का अभ्यास रखना है। संभव हो तो कोई काव्य लिखना शुरू कर दो।

उनका प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं पर अधिकार था। एक बार लाडनूं में पूज्यप्रवर का जब चातुर्मास था तब पूज्यप्रवर की प्रेरणा से साध्वी विमलप्रज्ञाजी और साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने अनेक संस्कृत-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। समय-समय पर संस्कृत श्लोक, संस्कृत में गीत और संस्कृत में निबन्ध भी लिखे। संस्कृत श्लोकों की समस्यापूर्ति में भी कई बार भाग लिया।

आगमकार्य की दक्षता के साथ-साथ उनमें साहित्यिक प्रतिभा भी थी। समय-समय पर गीत भी बनाती थी। उनके गीत सामयिक, साहित्यिक व भावपूर्ण होते थे। एक बार साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने उनके द्वारा निर्मित गीतों को देखकर साध्वियों को प्रेरणा देते हुए कहा—'गीत बनाना सिद्धप्रज्ञाजी से सीखो।'

गीत प्रतियोगिता में प्रथम स्थान

अभी श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी के अमृत महोत्सव पर साधु-साध्वियों की गीत प्रतियोगिता रखी गई। उसमें उनका प्रथम स्थान रहा।

वह गीत है—

क्षण[1]दायी अमृत क्षण[1]

महातपस्वी महाश्रमण की आत्मा से इकलय है।
प्रभुवर प्रभुतामय है ॥
सुधापर्व की पावन बेला, अणु-अणु मंगलमय है।
विभुवर विभुतामय है ॥
नेमानंदन ने लघुवय में, नंदनवन को पाया।
तुलसी महाप्रज्ञ का साया, छायानिधि की छाया।
देवर्षि-ब्रह्मर्षि स्वामी, शासन देवालय है ॥

गुरुइंगित-आज्ञा-आराधन, क्षण-क्षण का रस खींचा।
शिष्यप्रवर ने पौरुष जल से, संयम सुरतरु सींचा।
मुक्त भाव से मधु फल बाँटो, पग-पग प्राप्त विजय है ॥

अगम आगमों में दृढ़ आस्था, भैक्षव गण इकतारी।
गण की ऋद्धि-वृद्धि हित जागृत, पल-पल जिम्मेवारी।
पंचाचार-प्रतिष्ठित गण हो, वांछित आत्मोदय है ॥

ओज[2] और अलमस्तु[3] पंथ पर, प्रस्थित हो हर साधक।
गुरुनिष्ठायुत ज्ञान-चरणवर-दर्शन का आराधक।
गणमाली का सपना सच हो, हार्दिक यह अनुनय[4] है ॥

श्रमण-सुसंस्कृति के ग्रंथों पर, चलता चिंतन-मंथन।
प्रवचन में नवनीत प्राप्त कर, प्रमुदित जन-जन का मन।
भाग्यबली हैं गण के नायक, गण का भाग्योदय है ॥

---

१. क्षण—आनंद/उत्सव।
२. ओज—वीतराग/अकेला।
३. अलमस्तु—केवलज्ञानी (अलमत्थु—भगवई)।
४. अनुनय—प्रार्थना/इच्छा।

सरल बाँसुरी सम हो जीवन, भंते! आशीर्वर दो।
उसके सब छिद्रों में अपने, गीतों के स्वर भर दो।
'गीतकार हूं, गायक हूं मैं'—निश्चित अहंविलय है।
देव तुम्हारी सुखद शरण में, 'सिद्धा' ज्योतिर्मय है ॥

लय : संयममय जीवन हो

उनकी 'श्रुतपरिक्रमा' पुस्तक में वे शोध-निबन्ध गुम्फित हैं जो समय-समय पर दर्शन परिषद् में पढ़े गए थे।

गुरुकृपा का प्रसाद

आगम के प्रति उनकी गहरी निष्ठा थी। निरन्तर आगमकार्य में रहने के कारण उनकी प्रज्ञा निर्मल बन गई थी। अनेक बार ऐसे जटिल स्थल जिनका अर्थ करना कठिन होता लेकिन सूक्ष्मग्राहिणी मेधा उस अर्थ को पकड़ लेती थी। एक बार बीदासर में साधु-साध्वियों की संगोष्ठी में पूज्य गुरुदेव ने पूछा—

गुरुर्गुरुत्वेन युतो नितान्तं,
यत्नं प्रकुर्वन् भविनां हिताय।
धर्माध्वनीनः समताप्रपीनो,
निश्काञ्चनश्चास्खलितप्रणालिः ॥ *भिक्षुगाथा-७७*

यहां अस्खलित प्रणालि का क्या अर्थ है? सब साधु-साध्वियां चिन्तन में डूब गए। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी खड़ी हुई और विनम्रता से उत्तर दिया—अस्खलित प्रणालि का अर्थ है—ब्रह्मचारी।

सही उत्तर सुनकर गुरुदेव ने साश्चर्य पूछा—यह अर्थ कहां से आया?

उनका विनम्र उत्तर था—गुरु-कृपा से।

गुरुदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें ९ कल्याणक से पुरस्कृत किया।

अनुप्रेक्षा से नया अर्थ

आगम-स्वाध्याय के समय वह हर शब्द की अनुप्रेक्षा करके आगे बढ़ती थी। एक बार उन्होंने समणीजी को गुरुदेव से निवेदन करने के लिए कहा—'संती कुंथु अरहो अरिट्ठनेमी जिणंद पासो य।'

इस गाथा में हम जो 'अरहो' बोलते हैं, यहां 'अरओ' होना संगत लगता है। चूंकि यहां 'अर्हत्' का प्रसंग नहीं है, 'अरनाथ' का प्रसंग है। गुरुदेव से जब यह निवेदन किया तो पूज्यप्रवर ने फरमाया—'सिद्धप्रज्ञा अर्थ को गहराई से पकड़ती है।'

परार्थ में समय का नियोजन

अपना कार्य हर व्यक्ति करता है, अपने अध्ययन के प्रति भी जागरूक रहता है। लेकिन साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के जीवन में एक विरल विशेषता थी। उनके पास जब भी कोई साध्वी, समणीजी, मुमुक्षु बहनें, श्रावक-श्राविकाएं अपनी जिज्ञासा, कार्य या अध्ययन हेतु आतीं तब वे यह नहीं कहती कि अभी मेरे पास समय नहीं है। मेरे पास अमुक काम आया हुआ है, प्रूफ रीडिंग करना है अथवा बुखार या धड़कन बढ़ी हुई है। वह तत्काल अपना कार्य छोड़कर स्वास्थ्य को गौण कर उनके कार्य को प्राथमिकता देती। यथाशक्ति सहयोग, मार्गदर्शन एवं जिज्ञासाओं को समाधान देने की कोशिश करती।

अध्यापन में उनकी सदा अभिरुचि और विश्वास था। औरों को पढ़ाना स्वयं का पढ़ना है, स्वयं के ज्ञान का संरक्षण व संवर्धन करना है—वे यह मानकर चलती थी। अध्यापन कार्य में वे कुशल थी। किसी बात को अनेक बार समझाने में भी उन्हें झुंझलाहट नहीं होती थी। वे मन्दबुद्धि विद्यार्थियों को बड़ी तन्मयता एवं आत्मीयता के साथ अध्ययन कराती। सेवाभावी साध्वियों को आगम-स्वाध्याय कराती। छोटी साध्वियों की उच्चारणशुद्धि एवं दसवैकालिक एवं प्रतिक्रमण की परीक्षा लेती रहती। बुजुर्ग, अक्षम साध्वियों के पास जाकर उन्हें प्रायः एक श्रुत-सामायिक कराती। कोई भी नया ज्ञान, नया संवाद उन्हें मिलता, उसे सबको सुनाकर अपने आनन्द में संभागी बनाती।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने बताया—'मैं पिछले पांच-छः वर्षों से निर्युक्ति-गाथाओं का अनुवाद कर उन्हें सुनाने और जो अर्थ गम्य नहीं होता, जटिल पाठ होता उसे समझने के लिए जाती थी। वे बड़ी तन्मयता से सुनती एवं आवश्यक सुझाव देतीं। अनेक बार तो ऐसे जटिल स्थल जिनका अर्थ करना बड़ा कठिन होता लेकिन उनकी सूक्ष्मग्राहिणी मेधा उस अर्थ को पकड़

लेतीं। जब तक किसी शब्द या प्रसंग का अर्थ नहीं बैठता तब वे बार-बार उठकर कभी कोश लाती, कभी कोई ग्रन्थ लाती तो घंटों उसके अर्थ खोजने में लगा देती। कभी-कभी तो किसी प्रमाण को खोजने में पन्द्रह-बीस दिन भी व्यतीत हो जाते लेकिन उनकी खोज चालू रहती। धैर्य ने उनका साथ नहीं छोड़ा। उपवास होता तब धड़कन बढ़ जाती, कभी बुखार होती फिर भी मना नहीं करती, कहती—'आप इतनी दूर से आई हैं—थोड़ी देर सुन लूंगी।'

चाकरी करनेवाली अनेक साध्वियों ने बताया—'आगम कार्य में उनकी निष्ठा गजब की थी। भयंकर गर्मी का समय हो या ठिठुरती सर्दी का। रात्रि में लम्बे समय तक कार्य करती थी। पास में बैठी साध्वियां कहतीं—साध्वीश्री! अब सोने का समय हो गया है। आज तो काम पूरा होगा नहीं, शरीर को भी विश्राम की आवश्यकता रहती है। आप श्रम में अति कर देती हैं। श्रम और विश्राम में संतुलन रहना अपेक्षित है।'

एक बार शब्द का अर्थ खोजते-खोजते आधी रात बीत गई। साध्वी श्री कमलश्रीजी की अचानक आंख खुली देखा—एक साध्वी बैठी है। वह उठकर पास में गई और पूछा—सिद्धप्रज्ञाजी! अभी तक सोई नहीं? घड़ी देखो! उन्होंने विनम्र उत्तर दिया—'साध्वीश्री! क्या करूं? मुझसे कोई पूछे, उसे मैं सही अर्थ सप्रमाण नहीं बताऊं तब तक चैन नहीं पड़ता।' आगम कार्य करते समय वह तन्मय तन्मूर्त्ति बन जाती। उस समय उनकी भूख भाग जाती थी, नींद हिरण हो जाती थी और व्याधि अपनी विभीषिका समेटकर किसी कोने में दुबक जाती थी।

धुन की धनी

लाडनूं का प्रसंग है। एक बार गोचरी आ गई। आहार का समय, सब साध्वियां पंक्ति में बैठ चुकी थीं। सिद्धप्रज्ञाजी को अनुपस्थित देखकर साध्वियों ने आवाज लगाई, इधर-उधर कमरों में खोजा पर कहीं नहीं मिली। अरे! आखिर गई कहां? इतने में शायद अमृतयशाजी को याद आया—पुस्तकालय में नहीं देखा, वहां देखकर आती हूं। वहां जाकर देखा तो वह आराम से खड़ी-खड़ी अलमारी में रखे ग्रन्थों के पन्ने पलट रही थी। इतने में और साध्वियां भी पहुंच गईं। उन्होंने कहा—वाह! कितनी आवाजें लगाई, कब से खोज रहे हैं? उन्होंने कहा—ओह! मुझे क्या पता! आप खोज रही हैं। मैं तो शब्दार्थ खोजने में इतनी एकाग्र हो गई कि शब्द सुनाई ही नहीं दिए। घड़ी की ओर देखकर कहा—ओह! मुझे यहां खड़े-खड़े एक घंटा हो गया। साध्वियों ने कहा—हम आपको खोजती रहीं और आप शब्दार्थ खोजती रहीं। बड़ी विचित्र है आपकी शैली।

कभी खाने के त्याग किए हुए होते। आहार आ जाता तो वे अपनी पात्री में आहार लेकर कक्ष में आ जाती। कभी दस-पन्द्रह मिनिट त्याग घटते तो स्वाध्याय में लग जाती। वह पढ़ने में इतनी डूब जाती कि आहार करना भी भूल जाती। फिर पात्री की ओर ध्यान जाता तब आहार करती। आगमकार्य करने की इतनी धुन थी कि खाना-पीना-सोना सब गौण हो जाता।

कितने भव कम

श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी फरमाते हैं—जो एक बार आगमबत्तीसी का अध्ययन कर लेता है। उसका कम-से-कम एक भव तो कम हो ही जाता है, ऐसा मुझे लगता है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का जीवन दिन-रात श्रुतदेवता की आराधना, परिक्रमा करते हुए बीता। न जाने उन्होंने कितने भव कम किए होंगे श्रुत-सागर में अवगाहन कर।

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या, ये यजन्तेऽञ्जसा जिनम्,
न किञ्चिदन्तरं प्राहु राप्ता हि श्रुतदेवयोः ॥

लाडनूं पुस्तकभण्डार

लाडनूं भंडार में हस्तलिखित प्रतियों की उन्हें पूरी जानकारी थी। कौन-सी प्रति किसे दी गई है, किसके पास है, किसने पुनः लौटा दी। इस दायित्व को पूरी जिम्मेदारी के साथ निभाया। इसके अतिरिक्त भंडार से कौन-सी वस्तु भेजी गई, कौन-सी वस्तु प्राप्त हुई, इसका लेखा-जोखा रखने में चाकरीवाली साध्वियों का पूरा सहयोग करती।

केन्द्र के द्वारा किसी भी कार्य का निर्देश मिलता वह उस कार्य को प्राथमिकता से सम्पादित करती थी। स्वास्थ्य को गौण करके रात्रि में ग्यारह बजे तक उस कार्य को करती रहती।

एक बार केन्द्र से कई प्रश्न जैसे माइक में बोलना, वस्त्र प्रक्षालन करना, परिष्ठापन हेतु प्लास्टिक की बाल्टियों का प्रयोग कब से शुरू हुआ आदि-आदि अनेक प्रश्न थे। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को भंडार में किस अलमारी में कौन-सी प्रतियां हैं—पूरी जानकारी थी। पुराने संग्रह की प्रति निकाली। १५-२० पन्ने साध्वियों को देखने के लिए दिए। वे घंटा-दो घंटा देखकर थक गईं। लेकिन वे तो ५-७ दिन और देर रात तक पन्ने पलटती रहती। जो उत्तर मिलता उसे नोट करती रहती। निष्ठा से दायित्व निभाने में ही उन्हें अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती थी।

सहिष्णुता की साकार प्रतिमा

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने जब से दीक्षा स्वीकार की तब से बीमारी उनकी सहचरी बन गई थी। लेकिन उन्होंने अत्यधिक प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया। बीमारी ने उनके मार्ग में अनेक अवरोध पैदा किए, पर वे उन्हें सोपान मानकर चढ़ती रही, आगे बढ़ती रही। उन्होंने अपने मस्तिष्क को डस्टविन नहीं, सदा थॉटबाक्स बनाए रखा। उनका चिन्तन विधायक था। इसलिए वे कहती—जो भयंकर वेदनीय कर्म उपचित किया है, उसे तो भोगना ही होगा। लेकिन इसके साथ उचित स्थान, ऊंचा लक्ष्य, कुशल मार्गदर्शक एवं संवेदनशील सहयोगी मिले हैं, यह सौभाग्य की बात है।

तेगिच्छं नाभिनंदेज्जा का संकल्प

आगम में कहा है—विशिष्ट साधना करनेवाला मुनि चिकित्सा की अनुमोदना न करे। रोग हो जाने पर समभाव से सहन करे। इस आगम सूक्त को आत्मसात् करने के लिए उन्होंने अध्यात्म चिकित्सा का ऊंचा लक्ष्य बनाया। वि.सं. २०४६ में उन्होंने एक संकल्प किया—

'जब तब चलने-फिरने का सामर्थ्य हो, तब तक होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक, एलोपैथिक—किसी प्रकार की दवा का प्रयोग नहीं करना। विकल्प—मैं जिनके पास रहूं, उन्हें मेरी वजह से शारीरिक असुविधा की अनुभूति हो और दवा लेने से कुछ सुविधा होने का पूरा विश्वास हो तो मुझे दवा लेने में कोई दिक्कत भी नहीं है। सर्वथा निष्प्रतिकर्म तो वैसे भी नहीं हूं। घरेलू उपचार—सूंठ, लवंग आदि तो यदा कदा प्रयुक्त होते रहते हैं। 'मिगचारियं चरिस्सामि' का निदर्शन तो गुरु-शक्ति' अनुग्रह—आशीष से ही बना जा सकता है। यह थी उनकी अध्यात्मनिष्ठा।

वर्तमान की परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा संकल्प वही कर सकता है, जिसका आत्मबल चट्टान के समान अडिग होता है।

समय-समय पर संकल्प कसौटी पर चढ़ा। जब वे शिक्षाकेन्द्र में थी, उस समय स्वास्थ्य में बहुत उतार-चढ़ाव आए। स्त्रीरोग सम्बन्धी शारीरिक कठिनाई बहुत बढ़ गई। फिर भी पंचमी-समिति के लिए बाहर जाती। हार्ट की समस्या के कारण धड़कन बहुत बढ़ जाती। तेज बुखार आ गया। इन सब परिस्थितियों के आने पर भी हिमालयी संकल्प अटूट रहा।

साथ रहनेवाली साध्वियों ने बहुत कहा—'वर्तमान समय में ऐसा संकल्प इस शरीर में क्या संभव है? बिना दवा के बीमारी से निजात पाना कठिन ही नहीं, कठिनतम है। इसके लिए पूरी धृति चाहिए।' वे सब कुछ मौनभाव से सुनती जाती और बात को टाल देती। उनकी संकल्पदृढ़ता के आगे बीमारी स्वयं उन्हें प्रणाम कर चली जाती।

सकारात्मक सोच उनके जीवन का आदर्श था। बीमारी के क्षणों में भी सोच कितनी विधायक थी—वे कहतीं—'मैं स्वस्थ हूं।' क्योंकि मेरी अस्थियां

अच्छी हैं। 'मुझे बीमारी है, पर मैं बीमार नहीं हूं।' 'मेरी आत्मा स्वस्थ है।' गुरुदेवः शरणमस्तु।

जब साध्वियां, समणीजी दवा के लिए आग्रह करती, तब वे धर्मसंकट में पड़ जाती। ऐसी स्थिति में एक बार रात्रि में ग्यारह बजे परमादरणीया महाश्रमणीजी को पत्र लिखा। पत्र उन्हीं की भाषा में—

पत्र महाश्रमणीजी के नाम—

आत्म-निवेदन

मम अन्तर् भावदर्शी महनीया महाश्रमणीजी!

- तेगिच्छं नाभिनन्देज्जा
- न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सइ
- न ते विज्जा तिगिच्छंति
- दुआ दवा से बढ़कर है।
- दृढ़निष्ठा नियम निभाने में...
- **भले रोग तन में रहे, संयमवर आरोग्य।**
  इससे बढ़कर है नहीं, कुछ भी करने योग्य ॥
- **मान्य कभी होगा नहीं, संकल्पों में छेद।**
  निश्चित गुरु की आस्था, करे रोग विच्छेद ॥
- संकल्प निभाते मरें तो क्या? संकल्प तोड़कर जिएं तो क्या?

ये वाक्यरत्न मुझे असंदीन दीप प्रतीत हो रहे हैं। जो क्षण-क्षण पथ को आलोकित कर रहे हैं। संकल्प को तोड़ने में अन्धेरा ही अन्धेरा नजर आ रहा है। उस अंधेरे में एक पग भी रखने की हिम्मत नहीं हो रही है।

समणीजी, साध्वीजी सब एक ही सुझाव/निर्देश दे रहे हैं दवा का, अपना दायित्व समझकर, पर...। संयोजिकाजी[1] बहुत ध्यान रखती हैं। सब साध्वियों की बहुत-बहुत सहयोग सहानुभूति है। आपके निर्देश की अपेक्षा रखती हैं। चार सप्ताह बाद यद्यपि अब मुझे रोगमुक्ति का अनुभव हो रहा है, फिर भी वाइचान्स रोग उभर जाए तब क्या करना है? जो आपका निर्देश...

---

१. साध्वी विमलप्रज्ञाजी

संकल्प का निर्वहन गुरु के हाथ है। गुरु ही उसे अन्त तक निभवा सकते हैं.। 'धम्मं सरणं गच्छामि' 'गुरुं शरणं गच्छामि।' किन्तु 'तिगिच्छगसरणं गच्छामि' या 'ओसहि-सरणं गच्छामि' का तो कहीं प्रावधान भी नहीं दिखता। पक्का विश्वास है कि आप मुझे मम इच्छित निर्देश ही देंगी। मैं जो इच्छा करती हूं, उससे पहले ही आप मेरी इच्छा को जान लेती हैं।

इस बार भयंकर स्थिति में भी संकल्प को निभा सकी, क्षणभर के लिए भी मन में विचलन नहीं हुई—यह सब पूज्य गुरुदेव आपकी कृपा का ही प्रसाद है। मेरे में इतनी हिम्मत कहां? आपके प्रताप से मैं सदा समाधि में हूं। 'जब तक चलने-फिरने का सामर्थ्य है, तब तक दवा न लेने का संकल्प है—इससे आगे आपका आशीर्वाद। यह संकल्प अकल्पित, अनहोना या अकल्प्य भी नहीं लगता।

दवा लेने से ठीक होगा ही—कोई गारण्टी नहीं। दवा न लेने से ठीक नहीं ही होगा—यह भी कोई जरूरी नहीं। यह भी देखा है, अनुभव किया है कि दवा से जो काम महीनों में नहीं होता, वह बिना दवा चन्द दिनों में ही हो जाता है... इसी पर टिकी है सारी संभावना; आस्था, विश्वास। कोई प्रयोग बताने की कृपा कराएं तो वह सहर्ष शिरोधार्य है। तीनों प्रकार की (ए.आ.हो.) दवाइयां मेरा कुछ हित साधेंगी—इसमें तिलभर भी विश्वास नहीं है। फिर जैसी आपकी मर्जी। 'गुरु आज्ञा सर्वोपरि है।' —यह मैं जानती हूं और यह भी जानती हूं कि संकल्प निर्वहन में गुरु का सहारा, गुरु की शरण ही सर्वोपरि है। गुरु-कृपानुग्रह से मेरा मनोबल निरन्तर अखण्ड बना रहे—यही आशीष चाहती हूं। विशेष रूप से चयन-दिवस के उपलक्ष्य में।

'निरामया भूयाः चिरायुः।'

'सिद्धप्रज्ञा स्थित होती है। वह कभी किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होती।' —सन् १९८५ आमेट में गुरुदेव द्वारा प्रदत्त मंगलकारी यह आशीर्वाद मेरा महासंबल है।

शुक्रवार माघ कृष्णा एकादशी रात्रि ११ बजे

प्रज्ञापर्व खण्ड अमृतायन, जै.वि.भा., सन् १९९१

महाश्रमणीजी ने फरमाया—'सिद्धप्रज्ञाजी संकल्पबली हैं। दवा नहीं लेना

तो नहीं ही लेना।' इसलिए योगक्षेम वर्ष में उन्हें एक टाइटल मिला—'दुआ ही दवा है।'

जब कोई उनसे पूछता आप कैसे हैं? भयंकर से भयंकर वेदना के क्षणों में उनका उत्तर होता—'गुरुदेव के प्रताप से ठीक है।' वेदना के क्षणों में भी उनके चेहरे पर मुस्कान बनी रहती थी। ऐसा लगता था मानो मुस्कराना उनका निसर्ग बन गया था।

'मुस्कराना जिन्दगी है, मुस्करा कर गम भुलाना जिन्दगी है।' इसलिए समय-समय पर पूज्यप्रवरों को अपना भावभरा आत्मनिवेदन संप्रेषित करती रहती थी, जो हर साधक के लिए एक प्रेरणादीप है।

विनम्र प्रतिवेदन

श्री चरणों में एक विनम्र जिज्ञासा

भंते! जब चलने-फिरने, ऊपर चढ़ने, विशेष कार्य करने की शक्ति ही न हो तो केवल खाने से क्या लाभ? 'लाभंतरे जीविय वूहयित्ता, पच्छा परिण्णाय मलावधंसी...

वैसे जीवन से कोई निराशा नहीं है, किन्तु लाभ कम हो तो किस आशा का सहारा लिया जाए?

उदयपुर में इको. इ.सी.जी. आदि की पूरी जांच के आधार पर हृदय विशेषज्ञों ने निर्णय दिया था—'बिना ऑपरेशन के ८-१० साल तो फिर भी जैसे-तैसे काम चल जाएगा, उसके बाद बड़ी कठिनाई होगी। दवा से मनस्तोष मिल सकता है, पर इसमें कुछ लाभ नहीं होगा।'

जब असंतोष ही नहीं है तो, मनस्तोष कैसा? पहले कई वर्षों तक दवाइयां ली थी—उस समय भी मुझे तो कोई लाभ नहीं लगता था, बस दूसरों के कहने से लेनी पड़ती थी। इन वर्षों में दवा नहीं ली, बड़ा सकून मिला। अब दवा लूं तो लाभ बहुत कम और अलाभ बहुत ज्यादा दीखता है। हां ताकत के लिए कुछ देशी प्रयोग करने की इच्छा है। जैसे आंवला, सौंठ...यह तो मन की भावना थी जो निवेदित की है।

अब जो निर्देश दिराएं वही शिरोधार्य है। अनुग्रहपूर्वक आदेश-निर्देश बहुत मूल्यवान एवं मंगलकारी होता है। वंदनीया महाश्रमणीजी के अनन्य

अनुग्रह एवं सबकी अतिरिक्त सहानुभूति और सहयोग के प्रति–

बहु कृतज्ञास्मि

तर तर तन छीजै, आमय अप्रतिकार हो—परिणामदर्शिता सूत्र।
मन की मजबूती करदै खेवो पार हो—आलम्बन सूत्र।

• रोगमुक्त बनूं तो दीक्षा लूंगी।
• अठाई हो जाएगी तो सुदी बारस का उपवास करूंगी।

इस बार भी छोटा-सा संकल्प—

• जब तक चलने-फिरने का सामर्थ्य हो, तब तक किसी प्रकार की दवा (ए.हो.आ.) का प्रयोग नहीं करूंगी।

संकल्प से बड़ा बल मिलता है।

• दवा लूं तो संकल्प अखंड कैसे रहे?
• दवा न लूं तो निर्देश पालन कैसे हो? समाधान?

वैसे देखूं तो लगता है कि संकल्प निभाने में तो गुरु-निर्देश की अनुपालना हो ही रही है।

क्षणभर के लिए मान भी लें कि दवा लेनी है तो क्या प्रतिदिन ४-५ टेबलेट के हिसाब से लम्बे समय तक सहज अक्रीत दवा उपलब्ध हो जाएगी? हो भी जाए तो कोई विशेष लाभ नहीं है।

गुरु-कृपा से आनन्द में हूं।

कभी निराशा नहीं आये, मनोबल मजबूत बना रहे, इसके लिए मार्गदर्शन कराएं।

स्खलना-अविनय, आशातना के लिए पुनः पुनः क्षमायाचना।

अब क्या करना है?

मुझे तो लगता है यदि दवा लेती तो इन चार महीनों में बहुत संभव था—सैकड़ों गोलियां खानी पड़ती। ग्लूकोज़, बेडरेस्ट, हॉस्पिटल के चक्कर... न जाने क्या-क्या करना पड़ता। बड़े कड़े बन्धन में रहना पड़ता। देव गुरु धर्म के प्रताप से इनसे बच गई। इसे मैं अपना बहुत बड़ा सौभाग्य मानती हूं। गुरु कुशल महाचिकित्सक हैं। साध्वियों का सहयोग सहानुभूति महान् पथ्य है। संकल्प ग्लूकोज़ है। अनुप्रेक्षा टॉनिक है। कायोत्सर्ग बेडरेस्ट है। जप महान् औषध है। आगमकोश सुप्रतिष्ठान है। यह है इन्फेक्शन-रिएक्सन

के खतरों से मुक्त चिकित्सा पद्धति—मेरी दृष्टि में।

दवा न लेने की छूट दी—इसके लिए अत्यन्त आभारी।

बहुत-बहुत कृतज्ञ। गुरुदेवः शरणमस्तु

२०-११-१९९२

मिगसर बदी इग्यारस

उपर्युक्त चिंतन सही है या गलत?

तुब्भे जाणह, अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

समाधान स्वरूप पूज्या महाश्रमणीजी ने कहा—

ठीक है, अब हम दवा के लिए नहीं कहेंगे। जैसे समाधि हो, वैसे करो। घरेलू उपचार चालू रखो। भावों का प्रवाह-सा बह गया है। एक लेख बन गया है।

६-१२-१९९२

मिगसर सुदी १२ प्रथम

दवा न लेने की स्वीकृति पाकर उन्हें बड़े आत्मतोष का अनुभव हुआ। भयंकर वेदना के समय वे एक ही अनुचिंतन करती रहती—'समुद्‌भूत वेदना में समता रखना चौथी सुख शय्या है। अतः मैं सदैव उस सुखशय्या में रमण करती रहूं। मेरी चित्तसमाधि कभी भंग न हो। समता से सहन नहीं करने वाला एकान्त पापकर्म का बन्ध करता है। समता से सहन करना मेरे लिए 'महानिज्जरे महापज्जवसाणे' महान निर्जरा का हेतु है।

ठाणं सूत्र के चौथे स्थान में छह सौ बासठ चतुर्भंगियां प्रज्ञप्त हैं। उनमें से एक चतुर्भंगी है सुखशय्या की—

१. निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंकता।

२. कामभोगों में गहरी विरक्ति।

३. स्वलाभ में संतोष परलाभ में अनाकांक्षता।

४. समुद्‌भूत वेदना में समता।

आम आदमी के लिए एक सुखशय्या में सोना भी दुर्लभ है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी चार-चार सुखशय्याओं में सोकर जिन्दगी को बेहद आनन्दमयी बना रही थी, निर्जरा के विपुल वैभव पर आधिपत्य प्रस्थापित कर रही

थी। यही कारण था कि उनके मुख पर ये स्वर सतत मुखरित हो रहे थे—'आनन्दो मे वर्षति वर्षति' 'आनन्दो मे रोमणि रोमणि।'

गुरुदेवश्री तुलसी के शब्दों में इन सुखशय्याओं में—

'जितना सोएं उतना पाएं, क्यों कोई आ हमें जगाए?
हम हैं स्वयं स्वयं में लीन, क्यों हों गर्वित क्यों हों दीन?

सहपाठी साध्वी निर्वाणश्रीजी ने बताया—वेदना को समभाव से सहने की शक्ति को बढ़ाने के लिए वे कई बार अपने शरीर पर आकर बैठनेवाले मच्छरों को हटाती नहीं थी। समता के साथ वे उनकी प्रेक्षा करती रहती थी। सजग करने पर वे प्रत्युत्तर में कहती कि देखती हूं—'ये मेरी कितनी सेवा करते हैं?' अद्भुत थी उनकी समता, विलक्षण थी सहिष्णुता।

मैंने सेवाकेन्द्र लाडनूं में चाकरी (सेवा) का दायित्व संभाला। जैनविश्वभारती विश्वविद्यालय के वी.सी. लोढ़ा मेरे पास आए और निवेदन किया—साध्वीश्री! आपसे एक निवेदन करने आए हैं। आप साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को दवा लेने के लिए राजी कर दें। इनका स्वास्थ्य युनिवर्सिटी के स्नातकों, समणियों एवं मुमुक्षु बहनों के लिए कितना उपयोगी है। आप बड़ी बहन भी हैं, आपकी बात अवश्य मान लेंगे।

मैं कुछ कहूं, उससे पहले ही सिद्धप्रज्ञाजी ने तपाक से कहा—'मुझे यह बताएं कि क्या दवा लेने से ठीक होता ही है? कोई गारन्टी नहीं है और दवा न लेने से ठीक नहीं ही होगा, यह भी कोई जरूरी नहीं। फिर दवा लेने का आग्रह क्यों?' उन्होंने ऐसा प्रश्न किया कि हम सब निरुत्तर थे।

कृतार्थ हुआ संकल्प

एक वर्ष दो वर्ष नहीं, दस वर्ष तक दवा न लेने का संकल्प और वेदना का संघर्ष चलता रहा। संकल्पबल अपना परचम फहराता रहा। ग्यारहवें वर्ष में एक बार घोर वेदना का तीव्रतम उदय। उठना-बैठना, चलना-फिरना, सोना मुश्किल हो गया। भूख और नींद जैसे प्रवासी हो गई। आठ दिन-रात भयंकर वेदना से जूझती रही। शरीर पर शोथ भी आ गया। पर दवा की मानसिकता नहीं बनी। ४ जनवरी २००० में डॉ. भगवानदासजी आए। प्रिस्क्रिप्सन

लिखा। दवा की पर्ची को डेक्स में रख दी। रातें प्रायः भयंकर पीड़ा में जागते-जागते बिताई। नौवें दिन अपनी डायरी का पन्ना खोलकर पढ़ाया—'जब तक चलने-फिरने का सामर्थ्य, तब तक दवा न लेने का संकल्प... कितना विवेकपूर्ण था संकल्प... अमावस गुरुवार को दिन-रात उठ नहीं सकी। उस दिन स्वतः बिना किसी ननु न च के दवा, इंजेक्शन लिए। संभवतः

गुरु-आदेश का सम्प्रेषण : गुरुदेव का निर्देश

ऐसा ज्ञात हुआ है कि साध्वी सिद्धप्रज्ञा कुछ दिनों से अस्वस्थ है। वह तो सदा प्रसन्न रहनेवाली है। मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से स्वस्थ रहनेवाली है। इसी दृष्टि से अपनी शारीरिक कठिनाई को हल करती जा रही है और प्रसन्नता का जीवन जी रही है।

साध्वी सिद्धप्रज्ञा ने आगम के क्षेत्र में काफी काम किया है, कर रही है, रुचि है। यह एक भद्र सरल और विनीत साध्वी है। एक बात पर ध्यान देना है—अनेकांत का प्रयोग करना है, 'दवा नहीं ही लूं'—यह आग्रह छोड़कर स्वास्थ्य अच्छा रहे और इसलिए अच्छा रहे कि आगे और आगम का काम करना है। विचार कर जो जैसा सुझाव दे वैसा स्वीकार करे। कुछ समय पहले साध्वी यशोधराजी, साध्वी विमलप्रज्ञाजी भी हमारे पास थीं। दोनों तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए चिन्तित हैं। उनके काम में भी सहयोग करना है। इस पर ध्यान दो और जो उपचार उचित लगे वह करो, स्वस्थ बनो और फिर काम में लगो। साध्वी विश्रुतविभा हमारे पास बैठी है, वह भी परामर्श दे रही है कि उचित समाधान करो। हमारा आदेश और तीनों साध्वियों की बात को ध्यान में रखकर अनेकांत का प्रयोग करना है। 'दवा नहीं ही लूं'—इस आग्रह को छोड़कर उचित उपचार करना है।

आचार्य महाप्रज्ञ

इससे पहले गुरुदेव ने कभी दवा का आदेश नहीं दिया। गुरु महान होते हैं, अन्तर्द्रष्टा होते हैं। शिष्य के संकल्प को निभवाने में दक्ष होते हैं। कैसा विचित्र योग! गुरु कृपा शुभंकरी।

६-१-२००० गुरुवार की शाम को डॉ. विजय घोड़ावत का इलाज शुरू किया। ७-१-२००० शुक्रवार को पूज्यप्रवर का संदेश उपलब्ध हुआ। उसी

दिन से ही पूरा इलाज शुरू हुआ—(७ दिन पेनेसिलिन इंजेक्शन, ७-७ टेबलेट प्रतिदिन, बोवरन इंजेक्शन तीन)

उनकी विवेक चेतना जागृत थी। इसीलिए विवेकपूर्वक संकल्प किया कि जिस दिन साध्वियों से शारीरिक सेवा लेनी पड़े तो दवा का विकल्प है।

रात को १० बजे सिद्धप्रज्ञाजी के मन में चिन्तन आया—'गुरुदेव ने संदेश के अन्त में 'ॐ अर्हम्' कहा है, मुझे इसका जप करना चाहिए। कुछ क्षण उच्चारणपूर्वक जप किया, वे डायरी में लिखती हैं—आनन्द आया। आयारचूला के पांच सूत्रों का अनुवाद किया। लगभग ग्यारह बजे सोई। दर्द अधिक बढ़ने से एक बजे उठना पड़ा। करीब एक घंटा बैठी रही। फिर सोयी...उठी...' कितनी गजब की थी समता, सहिष्णुता!! सचमुच निष्प्रतिकर्म की ऐसी महान साधिका सबके लिए प्रणम्य है।

श्लाघनीय खाद्य संयम

साधु की तीसरी सुखशय्या है—स्वलाभ में संतोष परलाभ में निःस्पृहता। जो व्यक्ति स्वलाभ में संतुष्ट रहता है, वह कभी दुःखी नहीं होता, असंतुलित नहीं होता। प्रतिकूल परिस्थिति भी उसके आन्तरिक सुख को खंडित नहीं कर सकती। जो साधक इस सुखशय्या के रहस्य को नहीं जानता वह प्रतिकूल स्थान, प्रतिकूल आहार को पाकर दुःखी हो जाता है, तनाव से भर जाता है। स्थान, आहार, उपकरण आदि की प्रतिकूलता उसे असंतुलित कर सकती है।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने रुग्णावस्था में भी अपने सन्तुलन को बरकरार रखा। 'जवणट्ठाए न तु जिहाए' संयमयात्रा के निर्वाह के लिए साधु आहार करे। स्वाद—जीभ को राजी रखने के लिए नहीं। यह आर्ष वाणी उनके जीवन का आदर्श था। वह इस पद्य को गुनगुनाती ही नहीं थी प्रत्युत उसे जी रही थी—

'भोजन वेला में रहे, जितना संभव मौन।
सरस-अरस में उलझकर, दोष लगाए कौन?'

सरस-अरस, कड़वा-मीठा जैसा भी आहार उसे परोसा जाता 'महुघयं व भुंजेज्ज संजए' मधुघृत मानकर खा लेती थी।

'प्रसन्नमना भुञ्जीत' प्रसन्नमन से खाया गया आहार सहज ही पथ्य रूप में परिणत हो जाता।

'ओ भावे ओ भावे नहीं, ओ स्वभाव बेकाम।
भाड़ो देणो देह नै, ले प्रभुवर रो नाम ॥

अस्वादवृत्ति से 'मियासणे' मितभोजी एवं सीमित द्रव्य खाती थी।

हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा।
न ते विज्जा तिगिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा ॥

उनके स्वास्थ्य का यही राज था। हार्ट प्रोब्लम के कारण नमक निषिद्ध था। साधु के लिए अनुकूल पथ्य मिलना भी कठिन है। वह संतोषी प्रकृति की साध्वी थी।

सामूहिक व्यवस्था में अपने संविभाग में संतुष्ट थी। सेवाभावी साध्वियां कहती—सिद्धप्रज्ञाजी! आज आपके अनुकूल कोई व्यंजन नहीं मिला। उनका उत्तर होता—कोई बात नहीं है। मैं दूध के साथ फुलका खा लूंगी। दूध भी नहीं मिला है, तो छाछ के साथ खा लूंगी। अरे! वह भी नहीं आई। उन्होंने कहा—आप चिन्ता क्यों करती हैं? पानी तो बहुत है, पानी के साथ खा लूंगी। यह थी उनकी समता। 'जिइंदिए'—इन्द्रियों में रसना विजय दुर्जेय है। उनका स्वाद पर पूरा नियन्त्रण था। उन्होंने साध्वियों से कभी नहीं कहा—मेरे लिए अमुक पदार्थ की गवेषणा करो। आगे-पीछे वे कोई प्रतिक्रिया नहीं करती थी। मिला तो ठीक नहीं मिला तो ठीक।

आगम में उल्लेख है कि 'पडिग्गहं संलिहित्ताणं लेवमायाए संजए।'

मुनि पात्र के लेपमात्र को पौंछकर सब कुछ खा ले। हमने देखा—साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी दूध और चाय की पात्री भी पौंछ कर पूरी साफ कर देती थी। कोई साध्वी कह देती—चाय की पात्री को क्या चाटना है? उनका उत्तर होता—शास्त्रीय निर्देश जो है कि मुनि लेपमात्र तक पौंछ कर खा ले, कुछ भी न छोड़े। आगम वाक्य उनकी जीवनशैली के आदर्श थे।

धन्वन्तरि वैद्य

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने एक बार फरमाया—जो चित्तसमाधि पहुंचाता

है, वह धन्वन्तरि वैद्य से कम नहीं है। सिद्धप्रज्ञाजी ने इसे सुना ही नहीं किन्तु इसे आदर्श मानकर आत्मसात् करने का प्रयास किया। धर्मसंघ के अनेक सदस्यों की चित्तसमाधि में वे निमित्त बनी। वे रुग्णावस्था, तपस्या, अनशन आदि में छोटी-बड़ी साध्वियों की आत्मीयता से सेवा करती थी।

हार्ट की प्रोब्लम के कारण दीक्षा लेते ही उनका लाडनूं में लगभग स्थायी प्रवास जैसा हो गया था।

सेवा के निदर्शन

गंगाशहर, जोधपुर, राणावास, आमेट और श्रीडूंगरगढ़ पूज्य गुरुदेव एवं बीदासर में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की मंगल सन्निधि में छः पावस किए। इसके अतिरिक्त जब तक लाडनूं में शिक्षाकेन्द्र रहा, तब तक शिक्षाकेन्द्र में एवं शेष समय सेवाकेन्द्र में प्रवासित रही। २०३१ के बाद जितने भी पावस एवं मर्यादा महोत्सव पूज्यप्रवर के लाडनूं में हुए सबमें वे साथ थी। सेवाकेन्द्र में वृद्ध साध्वियों की सेवा उनकी रुचि का विषय था। सर्दी में गर्म पानी एवं गर्मी में ठण्डा पानी आता तो तत्काल उन्हें पिला आती। जिस किसी वस्तु की अपेक्षा उन्हें होती वह वस्तु उपलब्ध होने पर तत्काल लेकर उनके पास पहुंच जाती। उन्हें स्वाध्याय कराने, आगम पढ़ाने में बड़ा रस लेती थी।

बुजुर्ग साध्वी सूरजकुमारीजी को कुत्ता काट गया। एक बार हड्डी का फेक्चर हो गया। वे उनके साथ हॉस्पिटल गई, डॉक्टर को दिखाया। जो कर सकती थी वह सेवा मनोयोग से की। पुनः लौटी तो हरारत से बुखार भी हो गई।

लाडनूं में जब भी किसी साध्वी के ऑपरेशन होता या हॉस्पिटल जाने की अपेक्षा होती, वह तत्काल उनके साथ जाने और वहां रहने को तैयार हो जाती, जिससे चाकरी वाली साध्वियों को बड़ी सुविधा हो जाती। कोई भी साध्वी साथ में जाने के लिए कहती तो कभी मना नहीं करती थी।

चाकरी वाली अनेक साध्वियों ने बताया–साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का हमें बहुत सहयोग मिलता था। किसी की गमी में, रुग्णावस्था या तपस्या में दर्शन देने जाना हो अथवा संतों से खमत-खामणा करने जैनविश्वभारती

जाना हो या किसी का अतिरिक्त व्रत निपजाने जाना हो वे सदा तैयार रहती थी।

साध्वी कमलश्रीजी ने बताया—'एक बार संतों से पक्खीका खमतखामणा करने जैनविश्वभारती जाना था। सिद्धप्रज्ञाजी को रात्रि में तेज बुखार आ गया। मैंने कहा—कल आपको जैनविश्वभारती नहीं जाना है। ज्यों ही सूर्योदय हुआ मैं जिनरेखाजी के साथ गेट तक पहुंची। देखा—साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी गेट पर खड़ी है। मैंने साश्चर्य पूछा—तुम क्यों आई हो? उन्होंने कहा—आपके कक्ष की ओर मेरा ध्यान गया, देखा—आप गेडिया भूल गई हैं। तब मैं गेडिया लेकर आ गई। अब मेरे बुखार कम है, मैं ही चलूंगी। साध्वी जिनरेखाजी जाएंगी तो इनके अन्य कार्यों में विलम्ब हो जाएगा।' यह थी उनकी अनन्य सेवाभावना, सहयोग की कामना। कम से कम सेवा लेना और अधिक से अधिक सेवा देना यह उनका समुन्नत लक्ष्य था। 'नो निहेज्ज वीरियं' कभी अपनी शक्ति का गोपन नहीं करती थी।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने उनकी सेवाभावना का अंकन करते हुए लिखा—

'साध्वी सिद्धप्रज्ञा स्वयं अस्वस्थ है। फिर भी वृद्ध साध्वियों की विशेष सेवा करती है, इससे उसका विशुद्ध निर्जरापरक दृष्टिकोण प्रगट हो रहा है।'

लोगस्स का चमत्कार

साध्वी दर्शनविभाजी ने बताया—"जैनविश्वभारती अमृतायन में मैं सो रही थी। अचानक डरकर जोर से चीखी। चीख सुनकर सभी साध्वियां उठ गईं। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी मेरे पास आई। उन्होंने कहा—हाथ गर्म है, बुखार आ गया है। इतने में मुझे वमन हो गया। मैंने कहा—भीतर से कैसे-कैसे ही लग रहा है। उन्होंने पूछा—क्या कुछ दिखाई दे रहा है? मैंने कहा—कोई डरावनी आकृति दिखाई दे रही है। उन्होंने तत्काल 'लोगस्स' की माला सुनाना प्रारम्भ कर दिया। माला पूरी हुई, उससे पहले ही मैं नींद में चली गई। तीन बजे जब आंख खुली तब मैंने देखा—साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी अभी तक जाग रही है।"

सुबह जब मैंने कृतज्ञता ज्ञापित की। तब उन्होंने कहा—'देखो! शारीरिक सेवा का सामर्थ्य मुझ में इतना नहीं है पर आध्यात्मिक और मानसिक सेवा

तो कर ही सकती हूं।'

साध्वी पुण्यप्रभा ने बताया—"जब मैंने पन्द्रह दिन की तपस्या की। दिन तो आराम से बीत जाता पर रात्रि में नींद नहीं आती थी। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने पांच की तपस्या के बाद प्रतिरात्रि में जब तक मुझे नींद नहीं आती, तब तक 'भिक्षु म्हारै प्रगट्याजी भरत खेतर में' यह ढाल सुनाती रहती। उनकी यह स्वाध्याय-सेवा मेरी तपस्या में बहुत सहयोगी बनी।"

रात्रि जागरण

साध्वी योगप्रभाजी ने बताया—"रात्रि में मैं अस्वस्थ हो गई—आंखों के कोइये स्थिर, बोलना बंद हो गया। ग्यारह बज गए। भिन्न सामाचारी में ले जाने की स्थिति आ गई। सिद्धप्रज्ञाजी ने निष्ठा से जप प्रयोग किया बारह बजे स्थिति सुधार पर आने लगी। उन्होंने आत्मविश्वास के साथ कहा—यह यहीं ठीक हो जाएगी, कहीं ले जाने की जरूरत नहीं है। साध्वियों के कहने पर भी तीन बजे तक जप करती रही। उन्होंने कहा—सोते तो हमेशा ही हैं, यह निर्जरा का अवसर मिला है, इसे क्यों खोएं?"

लाडनूं की चाकरी

वि.सं. २०३५ गंगाशहर में पूज्य गुरुदेव का पावस-प्रवास था। व्याख्यान के पश्चात् साध्वीप्रमुखाश्रीजी आचार्यप्रवर के उपपात में विराजी हुई थी। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी तत्काल उठकर साध्वीप्रमुखाश्री के पास गई और विनम्र निवेदन किया—'कृपाकर मुझे लाडनूं की चाकरी में भिजवाओ।'

साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने पूज्यप्रवर से निवेदन किया—एकदम नई बात कह रही है, सिद्धप्रज्ञाजी लाडनूं चाकरी की अर्ज कर रही है। गुरुदेव ने स्मितवदन फरमाया—'सेवा की भावना प्रशस्य है।'

ऐसे तो साध्वीप्रमुखाश्रीजी से कोई आज्ञा लेनी होती तो कभी-कभी आधा घंटा सोचती रहती। संकोचवश आज्ञा लेने की हिम्मत नहीं होती। आमेट में सोने की आज्ञा लेने जा रही थी पर संकोचवश बहुत समय तक खड़ी रही पर साहस नहीं जुटा पाई पर चाकरी की अर्ज करने बेधड़क पहुंच गई श्रीचरणों में।

साध्वीप्रमुखाश्रीजी की जब लाडनूं चाकरी थी। तब बारह महीने ही सिद्धप्रज्ञाजी 'चाय' की गोचरी में बराबर जुड़ी रही। कभी भी उन्होंने शक्ति का गोपन नहीं किया।

नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए—एकमात्र उनका लक्ष्य था निर्जरा के वैभव का अर्जन। निर्जरा के हर प्रसंग पर वे आगे रहती थी।

अनशन में सेवा-सहकार

अनशन का अर्थ है जीवन की आशंसा और मौत की विभीषिका से विप्रमुक्त होकर मौत को चुनौती देना—

'मौत से डरता नहीं मैं, मौत मुझसे डर चुकी है।
मौत से मरता नहीं मैं, मौत मुझसे मर चुकी है।'

अनशन का अर्थ समाधिपूर्वक जागरूकता से मरण का वरण। अनशन का अर्थ है—साधुजीवन के अन्तिम मनोरथ की संपूर्ति। अनशनस्थ साधक के जीवन का पाथेय है—अध्यात्म का चिन्तन, मनन, श्रवण। आध्यात्मिक वातावरण से उसकी भावधारा पावन, पवित्र परिणामों की श्रेणी एवं निरन्तर आत्मा के आस-पास विहरण करती है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने अनशनस्थ आत्माओं को श्रुत स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा आदि के द्वारा भरपूर आध्यात्मिक सहयोग कर 'महानिज्जरे' महान् निर्जरा का लाभ उठाया।

साध्वीश्री इन्दूजी

साध्वी इन्दूजी ने १९८९ में १६ मार्च १० मई तक अर्थात् ५६ दिन (१७ दिन संलेखना ३९ दिन संथारा) तक संलेखना संथारा की आराधना की।

उस समय वयोवृद्धा साध्वी इन्दूजी सेवाकेन्द्र में विराजमान थी। साध्वीप्रमुखाश्रीजी 'अमृतायन' जैनविश्वभारती में विराज रही थी। योगक्षेमवर्ष का सुनहरा अवसर, नियमित कक्षाएं चलती थीं। इसलिए वे प्रायः सायंकाल वहां जाती। दोनों समय उन्हें प्रतिक्रमण सुनाती। 'आराधना', 'चौबीसी' का संगान करती। 'चंदेसु निम्मलयरा' 'अ.सि.आ.उ.सा.' 'ॐ अर्हम्' 'ॐ भिक्षु जय भिक्षु' आदि मंत्रों का जाप करती। अनित्य अनुप्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, श्वास प्रेक्षा, कायोत्सर्ग आदि अनेक प्रयोग कराती। अनेक बार रात्रि में

दो-ढ़ाई बजे उठ जाती, जप सुनाती, उनके पीठ, पांवों पर हाथ फेरती। रोज सुबह गुरुदेव को उनके बारे में रिपोर्ट देती। कभी-कभी विलम्ब होने पर गुरुदेव भी इन्तजार करते।

उनके हार्ट प्रोब्लम थी। फिर भी प्रतिदिन आहार कर शाम को वहां जाना कठिन कार्य था। पर निर्जरार्थी के लिए कठिन कार्य भी सुकर बन जाता है।

'तस्य तदेव हि मधुरम्, यस्य मनो यत्र संलग्नम्'

जिसका मन जिसमें रमण करता है, उसके लिए वही मधुर है। एक बार पक्खी का दिन था। अमृतायन में सैकड़ों साध्वियां थीं, लेकिन वहां जाने को कोई तैयार नहीं थी। उनका मन बहुत उदास हो गया। मैंने कहा—'तुम्हारा शरीर भी विश्राम मांगता है। आज सहज ही विश्राम हो जाएगा।' उन्होंने कहा—'मुझे तो विश्राम, परम शान्ति, परम आनन्द वहां जाकर उन्हें शास्त्रश्रवण एवं प्रयोग कराने से ही मिलता है। अतिरिक्त आह्लाद का अनुभव होता है। अन्यथा मेरा नियमित नित्यक्रम टूट जाएगा।' मैंने जब अपनी सहवर्ती साध्वी को उनके साथ जाने के लिए कहा तब उनका मुर्झाया चेहरा खिल उठा।

अनशन स्वीकार करने के बाद जब पता चला कि आप ३१ आगम का वाचन कर चुकी हैं। केवल (जीवाजीवाभिगम) सूत्र वाचन शेष रह गया है। सिद्धप्रज्ञाजी ने जब गुरुदेव को निवेदन किया तो युवाचार्यश्री ने 'जीवाजीवाभिगम' सूत्र की प्रति उपलब्ध कराई। बत्तीसी की पूर्ति का संकेत दिया। पूज्यप्रवरों का निर्देश प्राप्त कर अपनी कक्षाओं से अवकाश लेकर संलेखना-संथारा के ३२वें दिन ३२वें आगम का वाचन कराया। पूरे दिन आगम-पाठ का क्रम चला। सूर्यास्त से पहले-पहले सूत्र-पाठ सानन्द सम्पन्न हो गया। साध्वी इन्दूजी और साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को सुनने और सुनाने में अतिरिक्त आत्मतोष का अनुभव हुआ।

१० मई, प्रवचन समय, सुधर्मा सभा में जाकर जब साध्वीप्रमुखाश्रीजी को सिद्धप्रज्ञाजी ने संवाद दिया तो पुनः आप 'चेइयं' पधारी। १०.०७ मिनट पर गुरुदेव की अनुज्ञा से चौविहार अनशन पचखाया। सायं ०४.१७ मिनट

पर अनशन प्रवर्धमान भावों की श्रेणी के साथ सिद्ध हो गया। अनशन-सिद्धि के बाद जब सिद्धप्रज्ञाजी ने वहां से आकर वन्दना की तब गुरुदेव ने फरमाया— 'खूब लाहो लूंट्यो।' सिद्धप्रज्ञा निरन्तर वहां जाती, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि के प्रयोग कराती। इसने खूब लाभ उठाया है।

सेवाभावी

साध्वीश्री चम्पाजी

संलेखना सहित संथारा ४८ दिन तक चला। इसके मध्य उन्हें तेज बुखार हो गया। तब साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को उनकी शारीरिक सेवा का अवसर मिला। उनके ठंडे पानी की पट्टियां लगाना, सिर दबाना आदि कार्य करके चित्तसमाधि में निमित्त बनी। उन्हें जप, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, अनुप्रेक्षा आदि प्रयोग कराना नियमित क्रम था।

संलेखना का दसवां दिन था। महाश्रमणीजी जैनविश्वभारती से दर्शन देने पधारी। सुखपृच्छा के बाद पूछा—ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि करती हैं?

साध्वीश्री चम्पाजी ने निवेदन किया—महाश्रमणीवर! साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी मुझे बराबर करवाती हैं। मेरा ध्यान, कायोत्सर्ग आदि का प्रयोग ठीक चल रहा है। महाश्रमणीजी ने मुस्कराते हुए कहा—'सिद्धाजी! इनकी सिद्धभगवान से लौ लगा दो।' साध्वीश्री ने उनका नाम भी सेवाभावी निकाल दिया।

साध्वीश्री सजनांजी

दोनों साध्वियों का अनशन कई दिन तक साथ-साथ चला। 'भिक्खू दृष्टान्त, अमरगाथा, सतयुग की यादें, तेरापंथ के तीन आचार्य, उत्तराध्ययन, शासनसमुद्र भाग-१ आदि कई ग्रन्थों का दोनों को स्वाध्याय कराती।

साध्वी श्रेयस्करीजी

इनकी सेवा और स्वाध्याय का सुन्दर अवसर मिला। रात्रि में २ बजे से ४ बजे तक जप, कायोत्सर्ग आदि विभिन्न प्रयोग कराती। वे बार-बार कहती—'थे म्हांरी बोत सेवा करी हो।' मैं भी थांरी...

साध्वीश्री लक्ष्मीवतीजी

अनशन में उन्होंने सुधर्मासभा में श्रद्धेय गुरुदेवश्री तुलसी के करकमलों से जैन भागवती दीक्षा ग्रहण की। गौतमज्ञानशाला में उन्हें रखा गया। सिद्धप्रज्ञाजी ने उनकी सेवा में रहने का महाश्रमणीजी से निवेदन कर विशेष निर्देश प्राप्त

किया। महाश्रमणीजी मूल ठिकाने में विराजती थीं। वे भी साध्वियों के साथ सात दिन वहीं रही। उन्हें बड़ी निष्ठा से जप, ध्यान-स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि प्रयोग कराए। शारीरिक, मानसिक और भावात्मक समाधि में योगभूत बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

साध्वीश्री जस्सूजी

इन्हें भी अनशन में सुनाना प्रयोग कराना, सिर में वेदना होती तो सिर दबाकर उन्हें साता पहुंचाती। साध्वी जस्सूजी ने अनेक बार कहा— सिद्धप्रज्ञाजी सिर अच्छा दबाती है। इन्होंने मुझे बहुत साता पहुंचाई है।

साध्वी प्रमोदश्रीजी

चार दिवसीय अनशन में भरपूर समाधि पहुंचाई।

साध्वीश्री केशरजी

अमृतायन में पूज्य गुरुदेव से खाते-पीते वर्धमान परिणामों से अनशन का प्रत्याख्यान किया। काफी लम्बा अनशन चला। 'लोगस्स की माला' प्रतिक्रमण आदि सुनाने का पूरा लाभ उठाया।

साध्वी किरणयशा

मुमुक्षु किरण ने पा. शि. संस्था में रहते हुए संथारा किया। फिर जैनविश्वभारती 'शुभम्' में रही। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी प्रतिदिन शाम को मूल ठिकाने से चलकर वहां जाती। रात्रि में 'शुभम्' में ही शयन करती और लगभग १२.००-१२.३० बजे तक 'लोगस्स' का जप कराती। उनकी दीक्षा के बाद साध्वियों के साथ वह भी चार दिन वहीं रही। उन्हें समाधि पहुंचाने का परम पुरुषार्थ किया।

साध्वी कुसुमश्रीजी

पेरालाइसिस में उन्हें २८ दिनों का अनशन आया। उनकी सेवा-स्वाध्याय, प्रयोग कराने में सदा तत्पर रही।

श्रमणोपासिका फत्तूबाई

कमलजी डोसी की मां फत्तूबाई ने सुजानगढ़ में अनशन किया। गुरुदेव पाली में विराज रहे थे। गुरुदेव से विशेष निर्देश प्राप्त कर उन्हें दर्शन देने एवं अनशन में परिणामों की श्रेणी वर्धमान रहे, इसलिए दो बार लाडनूं से सुजानगढ़ गई। उनके सुनाने से फत्तूबाई को परम समाधि का अनुभव

होता था। उनके भाई अच्छे तत्वज्ञानी थे, पर किसी बात को लेकर संघ से विमुख हो गए। बहन चाहती थी कि किसी तरह मेरा भाई संघ-संघपति के प्रति पुनः आस्थाशील एवं अनुकूल हो जाए। सिद्धप्रज्ञाजी ने उनसे बातचीत की। उनकी सौम्यता, शालीनता, मधुरता एवं समझाने की शैली से प्रभावित हो पुनः अपने घर लौट आए।

श्रमणोपासक सूरजमलजी बैद

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी अनशनरत सूरजमलजी को दर्शन देकर आई ही थी कि थोड़ी देर बाद कमलप्रभाजी को दर्शन देने जाना था। ११.३० बज गए थे, आहार का समय हो चुका था। अपने साथ किसे ले जाऊं, साध्वीजी सोच ही रही थी कि सिद्धप्रज्ञाजी रजोहरण लेकर आई और कहा—मैं चलती हूं आपके साथ। साध्वीजी ने कहा—आप अभी-अभी जाकर आई हैं। बार-बार सीढ़ियां चढ़ना-उतरना आपके लिए ठीक नहीं है, अतः आप रहने दें, मैं किसी अन्य साध्वी को ले जाऊंगी। बड़ी संजीदगी के साथ वह बोली—साध्वीश्री! ये अवसर बार-बार नहीं आते। उनको कुछ गीतिकाएं सुनाएंगी। साध्वी योगप्रभाजी को भी साथ ले लें।

जब तीनों साध्वियां वहां पहुंची तब सूरजमलजी ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को बाहर भेज दिया। उन्होंने कहा—मुझे केवल साध्वियों को ही संघ के संदर्भ में कुछ बातें निवेदित करनी है। मुझे भिक्षु स्वामी का दर्शाव हुआ है। उन्होंने तीन बातें बताई जो शत-प्रतिशत सही हुई।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने मुस्कराते हुए कहा—साध्वीश्री! यदि मैं प्रमादवश नहीं आती तो इन बातों को सुनने से वंचित ही रह जाती। उनका हृदय संवेदनशील एवं करुणा का बहता निर्झर था। आबालवृद्ध को शारीरिक, मानसिक समाधि पहुंचाने में उन्हें अतिरिक्त आनन्द का अनुभव होता था। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में दुनियां का सबसे स्वादु फल है—सेवा। वह उसका बराबर रसास्वादन करती रही।

संस्मरणों के आलोक में

संस्मरण साहित्य की सहज सरल और रसभरी विधा है। संस्मरणों के माध्यम से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है। संस्मरणों के भीतर एक दिव्य प्रकाश होता है, जो पाठक के पथ को आलोक से भर देता है। संस्मरणों के भीतर एक अमृत का निर्झर बहता है जो पाठक को आनन्द से सराबोर कर देता है। संस्मरणों के माध्यम से व्यक्ति के अनछुए पहलुओं को जाना जा सकता है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के जीवन-संस्मरणों से उनके जीवन की विरल विशेषताओं से भी हम परिचित होंगे।

कायोत्सर्ग का संकल्प

लाडनूं में प्रवासित समणीजी पाक्षिक प्रतिक्रमण हेतु प्रायः सेवाकेन्द्र में आती हैं। चार समणीजी सामनेवाले बरामदे में और साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी सामनेवाली पोल में प्रतिक्रमण कर रही थी। प्रतिक्रमण के पश्चात् दो समणीजी आई और वन्दना कर उनकी उपासना में बैठ गई। प्रतिक्रमण सम्पन्न कर सिद्धप्रज्ञाजी ने पूछा—अमुक स्थान पर कौन समणीजी खड़ी थी?

समणी प्रणवप्रज्ञा ने कहा—साध्वीश्री! मैं खड़ी थी।

सिद्धप्रज्ञाजी—ध्यान करते समय आपने पैर हिलाया था?

प्रणवप्रज्ञाजी—ध्यान में मच्छर काट रहे थे। एक मच्छर ने इतना तीखा दंश लगाया कि मैं स्थिर नहीं रह सकी। पैर हिलाकर पुनः ध्यान कर लिया।

सिद्धप्रज्ञा—ध्यान शुरू से किया या शेष रहा उतना ही किया।

प्रणवप्रज्ञा—शेष था, उतना ही किया।

सिद्धप्रज्ञा—हमने 'तस्सउत्तरीकरणेणं' में संकल्प किया है कि जब तक ध्यान पूर्ण कर महामंत्र न बोलें, तब तक कायोत्सर्ग में अवस्थित रहेंगी।

अतः तुम्हारा संकल्प भंग हो गया। भविष्य में ध्यान रखना कि कायोत्सर्ग का संकल्प साधना का विशिष्ट संकल्प है। अतः जो आगार रखे हैं, उनके सिवाय शरीर में कहीं भी सूक्ष्म/स्थूल हलचल न हो। कदाचित संकल्प टूट जाए तो ध्यान शेष रहा, उतना नहीं पूरा करना चाहिए।

इससे स्पष्ट है कि वह साधना के हर प्रयोग में कितनी सजग और दूसरों को भी जागरूकता का पाठ पढ़ाने वाली थी।

इयाणिं नो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं

समणी रमणीयप्रज्ञाजी की ओर इंगित करते हुए कहा—जं वाइद्धं से आगे पाठ सुनाओ। समणीजी ने पूरी पाटी सुनाई।

सिद्धप्रज्ञाजी—भूल संशोधन करते हुए बताया—'दुट्ठुपडिच्छिन्नं' अशुद्ध पाठ है। यहां 'दुट्ठुपडिच्छियं' बोलना चाहिए।

रमणीयप्रज्ञा—साध्वीश्री! मैं इतने वर्षों से यही बोलती आई हूं। पता नहीं जागरूकता क्यों नहीं रही?

सिद्धप्रज्ञाजी—'इयाणिं नो जमहं पुव्व मकासी पमाएणं।' यह संकल्प करो, प्रमाद से पहले जो भूल हुई, उसे पुनः नहीं दुहराऊंगी।

पाठ संशोधन व उच्चारण शुद्धि पर वह बहुत बल देती थी।

भूल सुधार की कला

पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी ने संस्कारबोध में लिखा है—

भूल किसी की देखकर, कहें उसे एकान्त।
भाषा मधुर सुझाव की, बोलें होकर शान्त ॥

संस्कार बोध को केवल उन्होंने कंठस्थ ही नहीं किया, प्रत्युत उसे आत्मसात किया। जिसका निदर्शन है—

नवदीक्षित साध्वी रजोहरण बिना लिए ही इधर-उधर चली जाती। कभी अमृतायन से बाहर भी चली जाती। इस प्रमाद-संशोधन के लिए सिद्धप्रज्ञाजी ने शैक्ष साध्वी को अपने पास बुलाया और मधुर स्वरों में संबोध दिया—अब आप समणी योगप्रज्ञा नहीं, साध्वी योगप्रभा बन गई हैं। 'व्यवहार बोध' आपने कंठस्थ किया है। अतः गुरुदेव के इस पद्य को बराबर स्मृतिपटल

पर अंकित रखो—

इधर-उधर जाते समय, रजोहरण हो साथ।
परिमार्जन कर बैठना, दिन हो चाहे रात ॥

मां की गोद में बच्चे का सुख बसता है

समणी मंजुप्रज्ञाजी सिद्धप्रज्ञाजी से पक्खी के खमतखामणा कर रही थी।

सिद्धप्रज्ञाजी—पूज्य गुरुदेव द्वारा रचित अष्टप्रवचन माताओं की गीतिकाएं याद हैं? वह उत्तर देती उससे पहले दूसरा प्रश्न—क्या उनका स्वाध्याय निरन्तर करती हो?

मंजुप्रज्ञा—याद तो है, लेकिन साध्वीश्री! निरन्तर स्वाध्याय नहीं करती हूं।

सिद्धप्रज्ञाजी—प्रतिबोध देते हुए कहा—जैसे साध्वाचार का एक नियम है—प्रतिक्रमण करना। साधक ताप, पीड़ा, भूख और प्यास आदि तकलीफों में भी उस नियम का उल्लंघन नहीं करता है, वैसे ही ये अष्ट गीतिकाएं हमारे लिए स्मरणीय हैं। इन गीतिकाओं के माध्यम से हम अपने करणीय बिन्दुओं से साक्षात् संवाद कर सकते हैं।

बच्चा एक मां को पाकर निश्चिन्त हो जाता है। हम कितने सौभाग्यशाली हैं कि हमें एक नहीं आठ माताएं मिली हैं। साधु जीवन का सच्चा सुख इन अष्ट प्रवचन माताओं की आराधना में है। अपनी बात का उपसंहार करते हुए इस दिशा में संकल्पबद्ध कर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

केवल इन्द्रिय-तृप्ति ही लक्ष्य न हो

समणी मंजुप्रज्ञाजी लाडनूं का पुरातन ऐतिहासिक मंदिर देखने जा रही थी। उसने सिद्धप्रज्ञाजी के दर्शन किए और अपना मकसद बताया।

सिद्धप्रज्ञाजी—वात्सल्यपूर्ण भाषा में कहा—वहां १००० वर्ष पुरानी सरस्वती की प्रतिमा है। उसे गौर से देखकर मुझे बताना कि सरस्वती के हाथों में क्या-क्या वस्तुएं हैं। अपनी बात को चालू रखते हुए आगे कहा—याद रखो केवल पुस्तकें ही ज्ञान का स्रोत नहीं हैं अपितु बाह्य दृश्य, घटनाएं भी हमारे लिए प्रेरक बन सकती हैं। आंख का विषय केवल देखना है। देखे हुए तथ्यों की समीक्षा करना मस्तिष्क का काम है।

हमारा ध्येय आंख, कान आदि इन्द्रियों को तृप्त करने का नहीं अपितु पुरातन और नवीनतम की मीमांसा कर मस्तिष्क और आत्मा को नया पाथेय देना है। इस दृष्टिकोण का सर्जन करो जिससे विकास के नए वातायन खुल सकें। नए क्षितिज उद्घाटित हो सकें।

विनोदप्रियता

गंभीरता के साथ-साथ समय-समय पर विनोद भी कर लेती थी। साध्वी ललितकला ने बताया—गंगाशहर चोखले की आठ बहनें एक साथ संस्था में प्रविष्ट हुईं। उनको प्रणाम करने गई तो हंसते हुए कहा—आज जम्बू स्वामी की आठ नवोढ़ाएं आई हैं।

संस्था में एक नाम की दूसरी बहन आती तो उसका नाम—परिवर्तन कर दिया जाता। मेरा नाम लीला था। लीला बहन पहिले से ही थी। नाम परिवर्तन के लिए जब उनसे पूछा गया तो हास्य बिखेरते हुए कहा—इनका नाम रख दो 'लघुदण्डक'। उनके इस मजाक से सारा वातावरण मुखर हो गया। मुझसे पूछा—नाम पसन्द आ गया? मैं मौन थी। उन्होंने कहा—लघुदण्डक कंठस्थ है तो ठीक, नहीं तो संस्था काल में 'लघुदण्डक' थोकड़ा अवश्य सीख लेना है।

अप्रमत्तता की पर्याय

रात्रि में भयंकर गर्मी में भी आगम कार्य करती रहती। पास में बैठी साध्वियां जब स्वाध्याय करते-करते थक जाती, नींद सताने लगती तो कहती—साध्वीश्री! सोने का समय हो गया है। आज तो काम पूरा होगा नहीं, कल कर लेना। उनका उत्तर होता—'आज का काम आज' कल पर नहीं छोड़ना है।

साध्वियां—अच्छा, हम विस्तर कर आ रही हैं। वे कहती—अभी लाइट जल रही है तो उसका उपयोग कर लें। बिछौना तो अंधेरे में भी हो जाएगा।

प्रेक्षाप्रशिक्षिका

जैनविश्वभारती तुलसी अध्यात्म नीडम् में श्रद्धेय युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी की मंगल सन्निधि में प्रेक्षा प्रशिक्षक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन था। प्रातः

पूज्यप्रवर ही ध्यान कराते। कभी-कभी परीक्षा के लिए हम साध्वियों को ध्यान कराने का निर्देश देते। एक दिन सिद्धप्रज्ञाजी को निर्देश मिला प्रशिक्षुओं को ध्यान कराने का। 'संपिक्खए' 'अप्पणा सच्चमेसेज्जा', शरणसूत्र आदि सूत्रों का उच्चारण किया। प्रयोग कराए। युवाचार्यश्री ने फरमाया—सिद्धप्रज्ञा की प्राणशक्ति बहुत अच्छी है। उसी दिन मिल गया प्रमाणपत्र—प्रेक्षा प्रशिक्षिका का।

आकृति और आवाज में साम्य

लाडनूं में शिक्षाकेन्द्र की स्थापना, गुरुदेव ने मुझे शिक्षाकेन्द्र व्यवस्थापिका के रूप में नियुक्त किया। शिक्षार्थिनी साध्वियों की नियुक्ति हो रही थी। मैं जिस स्थान पर बैठी थी वहां से कार्यवश उठ गई। संयोग से सिद्धप्रज्ञाजी वहां आकर बैठ गई। गुरुदेव ने उनकी ओर संकेत करते हुए साध्वियों को फरमाया—इनको वन्दना करो। सब आश्चर्य में डूब गईं।

गुरुदेव का ध्यान गया, फरमाया—मैंने भ्रमवश इसे यशोधरा समझ लिया।

दो यशोधरा कहां से आ गईं?

मैं गुरुदेव के साथ थी। प्रवचन पण्डाल में अग्रिम पंक्ति में बैठी थी। सिद्धप्रज्ञाजी आदि साध्वियां लाडनूं से सुजानगढ़ आईं। जब सिद्धप्रज्ञाजी ने वन्दना की तो भ्रान्ति हो गई।

प्रवचन के बाद जब गुरुदेव चहल-कदमी कर रहे थे। उस समय हम दोनों बहनें उपासना में खड़ी थीं। गुरुदेव ने फरमाया—प्रवचन में मैंने सोचा—दो यशोधरा कहां से आ गईं?

आवाज में साम्य

सरदारशहर मर्यादा महोत्सव पर पूज्य गुरुदेव ने मुझे कलकत्ता यात्रा का निर्देश दिया—उस समय ब्रह्मवेला में मैं साध्वियों को ध्यान के प्रयोग कराती थी। मेरा विहार हो गया। तब साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने सिद्धप्रज्ञाजी को ध्यान कराने का निर्देश दिया। उन्होंने जब ध्यान से पूर्व 'संपिक्खए... आदि सूत्रों का उच्चारण किया तो साध्वियां असमंजस में पड़ गईं—साध्वी यशोधराजी की आवाज कहां से आ रही है?

भाई-बहनों को तो कई बार भ्रान्ति हो जाती। बहनें मेरे पास आकर कहती—आज आपका भाषण बड़ा प्रभावोत्पादक रहा। जबकि भाषण मैंने नहीं, सिद्धप्रज्ञाजी ने दिया था। कभी-कभी लड़कियां शर्त लगा लेती—यह आवाज मेरी है...

गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा

शिष्य सदा गुरुकृपा का आकांक्षी रहे। गुरु-निष्ठा सिद्धप्रज्ञाजी के रोम-रोम से मुखर हो रही थी। इसका प्रत्यक्ष अनुभव तब होता जब समणीजी, मुमुक्षु बहनें अथवा श्रद्धालु श्रावक-श्राविकाएं गुरु-दर्शन कर लाडनूं आतीं। गुरुदेव के शुभ संवाद सुनातीं। समाचार सुनकर उनके रोम-रोम पुलकित प्रफुल्लित हो जाते। समणीजी ने बताया—सिद्धप्रज्ञाजी को समाचार सुनाने में अतिरिक्त आनन्द की अनुभूति होती थी। वे बहुत रस लेकर संवाद सुनती। एक ही बात को यदि चार व्यक्ति अलग-अलग सुनाते तो भी वे उसी अहोभाव से सुनती। संवाददाता को यह अहसास नहीं होने देती कि यह समाचार मैं सुन चुकी हूं। कभी-कभी साध्वियां कहती—यह संवाद तो आप सुन चुकी हैं, अब बार-बार क्या सुनना है?

सिद्धप्रज्ञाजी विनम्र उत्तर देते हुए कहती—'गुरु का संवाद एक बार क्या, जितनी बार मैं सुनती हूं उत्कृष्ट रसायन आता है। कर्म-निर्जरा में समाचार सहायक बनते हैं। एक बार तो ऐसा लगता है—जैसे गुरुदेव का साक्षात हो रहा है।'

निस्संगे

वह अनासक्तचेतना की धनी थी। किसी भी वस्तु या व्यक्ति से प्रतिबद्धता नहीं थी। सहोदरी होने पर भी मेरे प्रति रागात्मकता नहीं थी। मुझे सम्मान भरपूर देती थी।

दक्षिण यात्रा के लिए प्रस्थान से पूर्व जब हम गुरुदेव से सीख लेने वहां पहुंची तब वे भी हमारे साथ थी। योगक्षेम वर्ष, हॉल साध्वियों से खचाखच भरा था। गुरुदेव ने विनोद के स्वर में पूछा—सिद्धप्रज्ञा! बहन के साथ यात्रा में नहीं जा रही हो? लोग क्या कहेंगे—बहनों के आपस में पटती नहीं होगी! सारा हॉल हास्य से मुखर हो उठा।

उन्होंने कहा—गुरुदेव! साध्वीप्रमुखाश्रीजी मेरी बड़ी बहन हैं। इनसे भी ज्यादा ध्यान देती हैं। 'गण में रहूं निर्दाव अकेलो' आचार्य भिक्षु का यह वाक्य उनके लिए ब्रह्मवाक्य था।

यही कारण है कि लाडनूं में वे लगभग ३२ वर्ष रही। इस लम्बे प्रवास के बावजूद वे किसी एक की नहीं बनी। जो एक में नहीं बंधता, वह सबका चहेता हो जाता है। इसीलिए आज लाडनूं का बच्चा-बच्चा उन्हें याद कर रहा है। आबालवृद्ध के साथ अपनत्व भरा व्यवहार, सबके सुख-दुःख में संभागी बनना उनकी आत्मौपम्यवृत्ति का परिचायक है।

अठाई की साध पूरी हुई

पूज्य गुरुदेव का लाडनूं पावस-प्रवास, सिद्धप्रज्ञाजी के मन में अठाई की उमंग जगी। पर्युषणपर्व का शुभारम्भ, बारस का उपवास किया। मन में संकल्प जागा—यदि अठाई हो जाए तो हर माह बारस (फूफाजी तपस्वी मुनिश्री हुलासमलजी की पुण्यतिथि) का उपवास करूंगी।

धड़कन बढ़ रही थी, बेले की भी आशा नहीं थी। पर फौलादी संकल्प की धनी आगे बढ़ती गई। प्रतिदिन पूज्यवर की दर्शन-सेवा का पूरा लाभ उठाया। संवत्सरी का प्रवचन भी सुना। साध पूरी हुई। पारणे के बाद एक सप्ताह पैरों के दर्द के कारण गुरु-वन्दना करने भी नहीं जा सकी।

वर्षों तक इस दुर्बल काया से निष्ठापूर्वक बारस का उपवास करती रही। फिर शायद गुरुदेव के निर्देशानुसार बारस का नमकवर्जन एवं तेरस का उपवास शुरू किया।

गजब की थी सहनशीलता

सहिष्णुता ही सफलता का राजमार्ग है। संयम की पौध सहिष्णुता की धरती पर ही लहलहाती है। साधु को वर्ष में प्रायः दो बार लुंचन कराना होता है। केशलुंचन करना भी एक कला है। जो साधु-साध्वी इस कला में निष्णात होते हैं, उनसे लुंचन कराने में कष्ट कम होता है।

लाडनूं का प्रसंग है। सेवाकेन्द्र व्यवस्थापिका साध्वी कमलप्रभाजी ने अपनी सहवर्ती साध्वी योगप्रभा और मंजुलाश्री से कहा—इस बार साध्वियों

का लोच तुम्हें ही करना है। उन्होंने विनम्रता से कहा—और सब साध्वियों का लुंचन करने की हम कोशिश करेंगी लेकिन साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का लोच हम नहीं करेंगी क्योंकि ये दुबली-पतली अस्वस्थ हैं। सिर पर केश भी बहुत हैं। अतः लोच भारी है। हम कोई एक्सपर्ट तो हैं नहीं, नवसिखुए हैं। इनको कितनी पीड़ा होगी।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने ज्यों ही हमारा संवाद सुना, तत्काल बोली—इस बार तो लुंचन मैं आपसे ही करवाने का भाव रखती हूं। साध्वीश्री! हमें अच्छी तरह करना आता नहीं है, आपको कितनी वेदना होगी, विनम्रता से साध्वियों ने निवेदन किया।

उन्होंने जो उत्तर दिया उसे सुन वे अवाक् रह गई।

उन्होंने कहा—जितनी ज्यादा वेदना होगी, समभाव से सहने पर मुझे निर्जरा भी उतनी ही अधिक होगी। आप घबराती क्यों हैं? मैं कायर-कमजोर नहीं हूं। समताभाव से बैठी रहूंगी, चाहे जैसे लोच कर देना।

सचमुच उस दिन न जाने कितनी पीड़ा हुई होगी। पर वे प्रतिमा की भांति स्थिरता से बैठी-बैठी स्वाध्याय करती रही, उफ तक नहीं किया। महानिर्जरा का उन्नत लक्ष्य जो सामने था। गजब की थी सहनशीलता।

विनम्रता : सम्पदा की सहेली

'विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्स य।'

दसवेआलिय के इस सूक्त को हृदयंगम कर अपने आपको उसी ढांचे में ढालती रही।

'रत्नाधिका भवेयुर्ये, सर्वदा विनयोचिताः।
विनयं नातिवर्तेत, तेषामग्रे महामतिः॥'

इस पद्य का अनुवाद था सिद्धप्रज्ञाजी का जीवन। उनके कक्ष में कोई भी रत्नाधिक साध्वी पधारती, वह सामान्य पढ़ी-लिखी हो या विदुषी, अग्रणी हो या सहवर्ती। तत्काल उठकर उनका अभिवादन करती, बैठने के लिए आसन देती। इस औपचारिक विनय में कभी उपेक्षा नहीं करती थी।

शासन गौरव साध्वीश्री कस्तूरांजी की चाकरी थी। वे जहां भी मिल जाती, उन्हें बैठकर वन्दना करती। वे कहती—जो बैठकर वन्दना करे—समझ

लो सिद्धप्रज्ञा है। बुजुर्ग साध्वियों को प्रतिदिन वन्दना करना उनका क्रम था। ऋषभद्वार (तेरापंथ भवन) में भी साध्वियां विराजती तो उन्हें वन्दना करना नहीं भूलती थी। मर्यादा महोत्सव पर ३००-३५० साध्वियों को भी यथासंभव वन्दना करती। हार्ट की मरीज होते हुए भी उनकी विनम्रता उल्लेखनीय थी।

तेरापंथ धर्मसंघ के हर साधक के लिए बड़ों के प्रति विनम्र होना कोई आश्चर्य नहीं है। विनम्रता का यह संस्कार सबको दीक्षा की जन्मघूंटी से प्राप्त होता है। पर हमउम्र तथा छोटों के प्रति मृदु व विनम्र व्यवहार सचमुच आश्चर्यकारी है। सहपाठी साध्वी निर्वाणश्रीजी ने लिखा—मैंने ऐसे आश्चर्य को उनके जीवन में अनेक बार देखा। वे हमउम्र तथा छोटों के परामर्श को भी बड़ी सहजता से स्वीकार करती थी।

ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी होते हुए भी व्यवहार के धरातल पर वे प्रायः अहंकारमुक्त थी।

नित्य नियम

साध्वी अमृतयशाजी ने बताया—एक दिन वे मुझे उत्तराध्ययनचूर्णि पढ़ा रही थीं। बात ही बात में पूछा—'जीवन में कुछ नित्य नियम है? सुबह-सुबह क्या चितारती हो?'

अमृतयशा—माला फेरती हूं और तो विशेष कुछ नहीं।

सिद्धप्रज्ञाजी—भक्तामर का पाठ करती हो? उत्तर नकारात्मक था। तब उन्होंने प्रेरणा के स्वर में कहा—'विघ्नहरण' 'मुणिन्दमोरा' 'भिक्षु म्हारै प्रगट्याजी...' 'प्रहसम परम पुरुष नै...' 'गौतम गणधर' आदि ढालें प्रतिदिन चितारा करो। मैं भी प्रतिदिन चितारने का भाव रखती हूं। वह दिन और आज का दिन इन सब गीतिकाओं को चितारे बिना मैं मुंह में पानी भी नहीं डालती। उसी का चमत्कार है—मैं धीरे-धीरे स्वस्थ हो रही हूं।

वे मुझे प्रायः सीख देती रहती कि परिस्थितियां चाहे कितनी भी प्रतिकूल हों, धैर्य और संयम नहीं खोना चाहिए। संतुलित रहकर मनोबल से काम लेना चाहिए। कठिन परिस्थिति में संयत रहने की भुआसामहाराज की सीख मेरे लिए बोधपाठ बन गई।

काले कालं समायरे

वह समय के मूल्य को पहचानती थी। जिस समय जो काम करना होता, उसे उसी समय सम्पादित कर विराम लेती। साध्वियां जब कहती—कुछ समय विश्राम कर लो, काम बाद में कर लेना। उनका सहज उत्तर होता—यह काम मुझे अभी करना है।

सिखाने की कला

श्रद्धेय गुरुदेव ने व्यवहारबोध की रचना की। साधु-साध्वियों को कंठस्थ करने की प्रेरणा प्रदान की। परीक्षा तिथि भी घोषित कर दी गई। साध्वी सिद्धप्रज्ञा को पता चला—दर्शनविभाजी कंठस्थ नहीं कर रही है।

उन्होंने प्रेरणा देते हुए कहा—अभी परीक्षा के सात दिन बाकी हैं। तुम सीखना शुरू करो। साध्वीजी ने जब सीखना स्वीकार नहीं किया तो प्रोत्साहित करते हुए कहा—तुम सीखो, पक्का कराना मेरा काम है। मधुर प्रेरणा ने उसे सीखने के लिए विवश कर दिया। जब सीखना शुरू किया तो वे दिन में तीन-चार बार सीखा हुआ व्यवहारबोध सुन लेती और आगे सीखने के लिए प्रेरित करती रहती। चार दिनों में पूरा व्यवहारबोध सिखा दिया। यह था उनका कंठस्थ कराने का तरीका।

जरूरी है कंठस्थज्ञान

जब दर्शनविभाजी उपासिका श्रेणी में थी तब सिद्धप्रज्ञाजी शिक्षाकेन्द्र में थी। वह ध्यान बहुत करती थी। एक दिन सिद्धप्रज्ञा ने पूछा—कंठस्थ क्या करती हो? उत्तर था—आचारबोध। पुनः प्रश्न किया—कितने दिनों में सीख लोगी? वहीं साध्वी विमलप्रज्ञाजी बैठी थी। उन्होंने कहा—आंखें बन्द कर बैठ जाएगी, होगा तब हो जाएगा।

सिद्धप्रज्ञाजी ने बड़ी आत्मीयता से बोध देते हुए कहा—कंठस्थ ज्ञान भी जरूरी है। पहले यह जनश्रुति थी—'ज्ञान कण्ठां दाम अण्टा'. जितना अधिक सीखोगी, स्वाध्याय अधिक कर पाओगी। एकाग्रता से किया गया स्वाध्याय भी ध्यान-साधना में सहयोगी बनता है। प्रेरणा के दो बोल साध्वीजी में कंठस्थ करने की अच्छी रुचि जागृत कर गए।

अद्वितीय ज्ञान पिपासा

डॉ. वन्दना मेहता ने बताया—मैं शोधकार्य हेतु यदा-कदा साध्वीश्री के पास जाती रहती थी। एक बार 'श्रीभिक्षु आगम विषयकोश' (स्वयं साध्वीजी द्वारा संपादित) के द्वितीय संस्करण-संशोधन के संदर्भ में भगवान महावीर के पहले भव नयसार का मूल संदर्भ मैंने उन्हें बताया। वर्धमान जीवनकोश का संदर्भ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के दसवें पर्व में प्राप्त होता है। उन्होंने कहा—तुम मुझे मूल ग्रन्थ उपलब्ध कराने का प्रयास करना। मैं जब भी जाती उनका अहं प्रश्न रहता—ग्रन्थ मिला क्या? केवल एक संदर्भ मिलाने के लिए वे लगभग दो वर्ष तक ग्रन्थ की पूछताछ करती रही। बहुत प्रयास करने के बाद मुझे वह ग्रन्थ प्राप्त हुआ और मैंने उन्हें समर्पित किया।

काम के प्रति समर्पण और ज्ञान की अमिट प्यास को याद करती हूं तो साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के प्रति मस्तक श्रद्धाप्रणत हो जाता है।

मैल निकालना है

सिद्धप्रज्ञाजी आगमकोश के कार्य हेतु सेवाकेन्द्र से ऋषभद्वार आई। वस्त्र मलिन देख विमलप्रज्ञाजी ने पूछा—धोना आ गया क्या[1]? उन्होंने कहा पन्द्रह दिन होने वाले हैं। क्या रात्रि में पहनने वाले वस्त्र लाए हैं? वे बोली—दो ही कपड़े पहने हैं। साध्वी विमलप्रज्ञाजी—दर्शनविभाजी धोना कर रही है वह प्रक्षालन कर देगी।

दर्शनविभाजी—आज पालर पानी नहीं है, कल प्रक्षालन का भाव रखती हूं।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने कहा—पालर-बाकल पानी में क्यों उलझ रही हो। कपड़ों का मैल तो निकल ही जाएगा? यह था उनका उपयोगितापरक दृष्टिकोण।

उच्चारण शुद्धि पर बल

साध्वी चन्द्रलेखाजी ने बताया—पारमार्थिक शिक्षण संस्था में एक बार भक्तामर के शुद्ध उच्चारण की प्रतियोगिता रखी गई। किसी भी मुमुक्षु ने शत-प्रतिशत अंक नहीं पाए। निर्णायिका मुमुक्षु सुशीला थी। उसने सबको

१. गुरुदेव द्वारा निर्धारित १०, १५ या ३० दिन की वस्त्र प्रक्षालन की अवधि।

प्रोत्साहित करते हुए पूरा भक्तामर शुद्ध कराया। सिन्दूरप्रकर का अर्थ कराया एवं उच्चारणशुद्धि पर विशेष बल दिया।

उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू

आगमों में स्थान-स्थान पर साधु के लिए 'पगई भद्दे' 'पगई मिउए' 'पगई पयणु कोहमाणमायालोहे' 'पगई उवसंते...' आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। इस दर्पण में उनका जीवन प्रतिबिम्बित हो रहा है। वह प्रकृति से भद्र, मृदु, मधुर एवं उपशान्त कषाय थी।

'जीवनं यत्र तत्रास्ति, परिस्थिति प्रताड़नम्'

जीवन हो और परिस्थितियों की प्रताड़ना न हो यह कब संभव है? पर साधुता की कसौटी है—अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलन...

एक दिन साध्वी पुण्ययशाजी ने कहा—साध्वीश्री! दो वर्षीय निकट संपर्क में मुझे कभी आपके चेहरे पर, वाणी-व्यवहार में आवेशात्मक भाव परिलक्षित नहीं हुए, जबकि सामूहिक जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियां तो आती ही रही हैं?

सिद्धप्रज्ञाजी ने मुस्कान बिखेरते हुए कहा—इस साधना को अभी और आगे बढ़ाना है। मेरी स्वस्थता और प्रसन्नता का यही राज है। मैं बराबर चिन्तन करती हूं कि मैंने 'सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।' अंतिम सांस तक मनसा वाचा कर्मणा अशुभयोग का त्याग किया है। कभी कहीं अशुभयोग न वरते, सदा शुभयोग बरतते रहें। आचार्यश्री महाश्रमणजी के शिक्षावचन—'सबसे बढ़िया मित्र है—शुभयोग। सबसे बड़ा शत्रु है अशुभयोग। जो साधु अशुभयोगों में अधिक समय बिताता है वह दरिद्र है। वे साधु-साध्वियां दुनियां के सबसे बड़े भाग्यशाली एवं आढ्य हैं—जो शुभयोगों में अधिक समय बिताते हैं। उनकी अगली गति भी अच्छी होने की पूरी संभावना है। जब तक वीतराग न बन जाएं तब तक कषाय की सत्ता रहेगी पर कषायआश्रव योगआश्रव में परिणत न हो।' ये वाक्यरत्न असंदीन दीप की तरह मेरा पथ आलोकित करते रहते हैं।"

मैंने देखा—कोई भी उनके साथ कैसा ही व्यवहार करे—वह प्रतिक्रिया

विरति का अभ्यास करती थी/। निषेधात्मक भाव पाप है—आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के इन शब्दों को आत्मसात कर वह पापभीरु पाप से आत्मा की सुरक्षा करने में सतर्क थी। जब कोई उनके सामने निषेधात्मक चर्चा करता तब वे उदासीन बन जाती। अवसर होता तो उसे निरर्थक बातों से प्रेरणा देकर बचा लेती।

लाडनूं सेवाकेन्द्र में लम्बे प्रवास में सैंकड़ों साध्वियों के साथ रही। क्योंकि वहां प्रतिवर्ष बुजुर्ग साध्वियों की सेवा में पूर्व नियुक्त दो ग्रुप अपना कार्यकाल संपन्न होने पर नव नियुक्त दो ग्रुपों को दायित्व सौंपकर विहार कर देते हैं। कोई साध्वी एक ग्रुप में वर्षों रहती है, कोई दो-तीन चार पर वे तो वहां स्थिरवासिनी की तरह होने से अनेक-अनेक ग्रुपों के साथ बड़े सौहार्द और सामंजस्यपूर्वक रही। कोई आए कोई जाए—'ना काहू से दोस्ती और ना काहू से वैर।' हमें लाडनूं चाकरी में, शिक्षाकेन्द्र में, महोत्सव और योगक्षेमवर्ष अथवा आते-जाते यदा-कदा साथ में रहने का अवसर मिला पर मुझे जहां तक याद है—उनके मुख से किसी भी ग्रुप या साध्वी की निन्दात्मक, आलोचनात्मक बात नहीं सुनी। वे हमेशा किसी की विशेषता को आगे रखती, गुणात्मक बात ही करती थी।

कषायमुक्तिः किल मुक्तिरेव—कषाय कृश हो, मन्द हो, एतदर्थ वे अपना अल्ट्रासाउण्ड, एम.आर.आई. करने का प्रयत्न करती रहती, किसी संसाधन से नहीं अपितु आंखें मूंद कर प्रेक्षा-प्रयोगों से।

किसी की गल्ती बताकर उसकी खिंसना, भर्त्सना, अवमानना करना उनकी जीवनपोथी में कहीं नहीं लिखा था। दूसरों को भरपूर सम्मान देने में उन्हें आह्लाद की अनुभूति होती थी।' यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि दूसरों को सम्मान देना स्वयं सम्मान पाना है।

सामूहिक अर्हतवन्दना

लाडनूं में प्रायः अर्हत्वन्दना नीचे होती है। वृद्ध साध्वियां ऊपर रहती हैं। बार-बार सीढ़ियां उतरने-चढ़ने में कठिनाई होने के कारण सिद्धप्रज्ञाजी ऊपर उन वृद्ध साध्वियों के पास चली जाती जिन्हें चलने-फिरने में कठिनाई थी। आस-पास की अन्य वृद्ध साध्वियों को वहां बुला लेती और अर्हत्

वंदना में संभागी बना लेती। तत्त्वचर्चा भी करती।

नियम एवं सामूहिक चर्या में सदा सचेत रहती थी। सारे दिन की थकान होने पर भी उस समय विश्राम का मौका नहीं टटोलती थी।

महान उपकार

जब सुशीला पारमार्थिक शिक्षण संस्था में थी, तब बड़ी बहन भरी जवानी में सात दिन कोमा में रहकर चल बसी। परीक्षा के दिन थे। संयोजक साहब की अनुमति ले किरणदेवी के ससुराल सुजानगढ़ पहुंची। जीजाजी बच्छराजजी नाहटा, भानजे-भानजी—निर्मला मंजुला इजरज कुसुम, चैनरूप और मिलाप को पास में बैठाकर जप शुरू किया। लगभग तीन घंटे जप चलता रहा। फिर सबको मधुरता से समझाया।

बच्चों से पूछा—तुम मां को सुखी देखना चाहते हो? सबने कहा—हां। सुशीला—मां की आत्मा तो अमर है, वह तो मरी नहीं है, वह जहां भी गई है, तुम्हें रोते देखेगी तो दुःखी होगी। शान्त रहोगे तो उसे भी शान्ति मिलेगी। अतः रोना नहीं है। इस तरह समझाया कि वे आज भी आभार मानते हैं। जीजाजी कई बार कहते—यदि साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी उस समय हमें नहीं संभालते तो हम आर्त्तध्यान में डूबकर न जाने कितने कर्मों का सघन बन्धन कर लेते। उनका हमारे पर महान उपकार है।

छोटे भाई शान्तिकुमार को भी दीक्षार्थ तैयार करने के लिए गुरुदेव कई बार फरमाते। सुशीला ने पुरुषार्थ भी किया। वैराग्यवर्धक हेमनवरसो आदि भी पढ़ाए। पर चारित्रमोहनीयकर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ।

कोई मांग नहीं, कितनी बड़ी बात!

जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में अध्यात्म की लौ प्रज्वलित हो जाती है, उस व्यक्ति को भौतिक आकर्षण नहीं लुभा सकते। सिद्धप्रज्ञाजी के मन से भौतिक आकांक्षा प्रायः समाप्त-सी हो गई थी।

एक बार पूज्य गुरुदेव भिक्षुविहार (जैनविश्वभारती) में विराजमान थे साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी उपासना में बैठी थी। गुरुदेव ने साध्वीप्रमुखाजी को दो-तीन बार फरमाया—इसे कुछ चाहिए तो दे दो। उन्हें भी कहा—कुछ

भी अपेक्षा हो तो हमें बता दिया करो। संकोच क्यों करती हो? सिद्धप्रज्ञाजी ने विनम्र निवेदन किया—मुझे केवल गुरुकृपा, गुरुआशीर्वाद चाहिए और कुछ नहीं चाहिए।

गुरुदेव ने फरमाया—'तुम्हारी कोई मांग नहीं है, यह कितनी बड़ी बात है।' गुरुदेव के अनमोल वचनों में उनकी निःस्पृहता झांक रही है।

'अप्पिच्छे' 'अप्पोवहि उवगरणे'

हम बिहार-बंगाल की पांच वर्ष की और साउथ की सप्तवर्षीय यात्रा कर लौटी, ज़ब भी मिलते, उनसे कहती—अमुक वस्तु ले लो, कुछ भी चाहिए ले लो, उनका एक ही उत्तर होता—मुझे कुछ नहीं चाहिए। मेरे पास जो कुछ है, उसमें से आपको चाहिए तो ले सकते हैं। अतिरिक्त, अनावश्यक उपकरण उन्हें भार लगते थे। उपयोगी, हल्के उपकरण देती तो पुराने उपकरण हम ले लेती, तभी उन्हें संतोष होता। उदारता इतनी कि कोई भी वस्तु किसी साध्वी को पसन्द आ गई और मांग ली, वे तत्काल उसे सहर्ष दे देती थी।

उनके सामने एक चित्र स्पष्ट था कि मृत्यु का कोई समय नहीं है—'नत्थि कालस्स णागमो' 'नाणामुहो मच्चुमुहस्स अत्थि' मृत्यु किसी समय किसी द्वार से आ सकती है। इसलिए व्यक्ति को हर क्षण जागरूक रहना चाहिए। इस वाक्य की अनुप्रेक्षा से उन्होंने हर क्षण निःस्पृह बनकर जागरूकता से जीने का प्रयत्न किया।

'जो जितनी छोड़ता चला जाएगा, आकर्षणों की सीढ़ियां।
उसे उतना ही याद करेंगी, आनेवाली पीढ़ियां॥'

आगममनीषी मुनिश्री दुलहराजजी जैनविश्वभारती में विराज रहे थे। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी सेवाकेन्द्र में एकल आगमकार्य में निरत थी। उन्हें अपना आगमकार्य दिखाने के लिए प्रायः मुनिश्री के पास जाना होता था। विधि-विधान के अनुसार आने-जाने में इन्हें एक साध्वी का सहयोग निरन्तर अपेक्षित था। वह अपेक्षा पूरी की बुजुर्ग साध्वी सूरजकुमारीजी और उनकी अनुपस्थिति में अस्सी वर्षीया साध्वीश्री सुवटांजी ने। उनकी विनम्रता और व्यवहारकुशलता ऐसी थी कि वे साध्वियां पूर्ण उत्साह एवं प्रसन्नता से उनका सहयोग करती।

श्रीभिक्षु आगमकोश, आगमों का अनुवाद एवं साध्वियों-समणीजी की जिज्ञासा-समाधान के लिए कई सन्दर्भ ग्रन्थों एंवं कोशों को लाने एवं रखने में काफी कठिनाई होती थी। धड़कन बढ़ जाती थी, फिर भी उन्होंने कभी मांग नहीं की कि मुझे एक सहयोगिनी साध्वी चाहिए।

विनोद के स्वर

समणी मलयप्रज्ञा ने युवाचार्यप्रवर से निवेदन किया—'साध्वीश्री सिद्धप्रज्ञा के लिए संदेश लिखने की कृपा कराएं।'

युवाचार्यश्री—सिद्ध के लिए लिखने की जरूरत नहीं होती। ये तो सिद्ध हैं। लिखकर तो साधक को देना होता है। मुस्कराते हुए युवाचार्यश्री ने संदेश लिखना प्रारम्भ कर दिया।

शिक्षा-दर्पण

गुरुदेवश्री तुलसी के अनमोल बोल

गुरुदेव समय-समय पर शैक्ष साध्वियों को शिक्षण-प्रशिक्षण देते रहते थे। कुछ शैक्ष उनके एक-एक अनमोल बोल को सहेज कर ही नहीं आत्मसात् करने का प्रयास करते थे। उनमें एक निदर्शन है साध्वी सिद्धप्रज्ञा... उन्हीं की डायरी से—

"क्या किया क्या कर रहा हूं और क्या करणीय है?
कर सकूं फिर भी न करता, यह सदा स्मरणीय है।"

ये पंक्तियां बड़ी मार्मिक हैं। साधना के क्षेत्र में आत्मालोचन, आत्मावलोकन, आत्मनिरीक्षण की दृष्टि से इस आर्ष वाक्य को सदा याद रखो—

"किं सक्कणिज्जं न समायरामि"!

कितनी सौभाग्यशालिनी हो तुम! यह अमूल्य मानव जीवन मिला है। उत्तम कुल और उत्तम क्षेत्र मिला है। अनुत्तर धर्मगुरु और अनुत्तर धर्मशासन मिला है। सब कुछ छप्पर फाड़कर मिला है।

तिस पर भी यदि पूरे लाभ से वंचित रह जाओगी तो यह भी वैसी ही मूर्खता होगी, जैसी कि एक व्यक्ति अपनी सहज प्राप्त स्वर्णमुद्राओं को धोने के बहाने उन्हें सरिता के प्रवाह में बहाकर करता है। ऐसी मूर्खता तुम्हें नहीं करनी है। इस प्राप्त संयम-निधि को जान-अनजान में नहीं खोना है। बहुत सम्भाल कर रखना है।

देखो! तुम साध्वी हो, पल-पल जागृति का जीवन जीना है। प्रतिदिन, प्रतिक्षण यह चिन्तन करती रहो कि कौन-सा ऐसा प्रशस्त कार्य है, जिसे मैं कर तो सकती हूं, पर प्रमादवश नहीं कर रही हूं। आत्म-निरीक्षण के

क्षणों में जरा गहरे में उतरकर सोचा करो कि क्या मैं अपनी क्षमताओं का खुलकर उपयोग कर रही हूं? अपनी शक्तियों का कहीं गोपन तो नहीं कर रही हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं आलस्य को त्याग तो सकती हूं पर नहीं त्याग रही हूं। क्रोध को छोड़ क्षमा के राजपथ पर चल तो सकती हूं पर नहीं चल रही हूं। कंठस्थ ज्ञान, स्वाध्याय और ध्यान के प्रयोग कर तो सकती हूं पर नहीं कर रही हूं। सचाई के साथ इन सवालों को अपने आप से पूछो और सक्रिय समाधान प्राप्त करो।

अध्ययन भी करो तो चालना—प्रत्यवस्थानपूर्वक करो। खूब ऊहापोह, तर्क-वितर्क, चोलना-पचोलना करो। प्रत्येक शब्द की सूक्ष्मता में पहुंच कर उसके अर्थ-गौरव को प्राप्त करो। इससे अध्ययन में ठोसता और सूक्ष्मता सहज प्राप्त होगी।

कभी निराश-हताश मत बनो। कहीं भी हार और भार मत मानो। सदा प्रसन्नचित्त, हंसती-खिलती रहो। सफलता स्वयं तुम्हारे द्वार खटखटाएगी।

ये हैं अबोल बोल हमारे परमाराध्य पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी के। जिनका श्रवण-मनन-निदिध्यासन कर हम सब छोटी-छोटी साध्वियों ने अपूर्व तृप्ति का अनुभव किया, कर रही हैं, करती रहेंगी।

वि.सं. २०३५
गंगाशहर

इस शिक्षा-दर्पण में साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का जीवन स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो रहा है। उन्होंने इसके अनुरूप अपने आपको ढालकर, एक-एक शब्द को जीवनगत कर एक-एक पल को सार्थकता दी है। सचमुच वह हमारे लिए अनुशंसनीय है, अनुकरणीय है।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

संयमसाधना के पच्चीस वसन्त पूरे हो गए हैं, यह प्रसन्नता का विषय है। संयमयात्रा, सभक्ति श्रुत आराधना अर्हत् की आराधना है। पच्चीस वर्षों से तुम पूरे मन से साधना, आराधना और श्रुत की परिक्रमा कर रही हो। आगमसिन्धु में अवगाहन कर अनमोल रत्न हस्तगत कर रही हो। यह गुरुकृपा का ही प्रासाद है।

साधना और श्रुत की आराधना तुम्हारे जीवन में मणिकांचन संयोग है। संयमधन साध्वियों की चित्त-समाधि में और विशेषतः अनशनरत आत्मतीर्थ के यात्रियों की समाधि में जुड़ा तुम्हारा मन संयमपज्जवों को निर्मलता प्रदान कर रहा है।

तुम्हारे धृतिबल, मनोबल, निःसंगता, अनौत्सुक्य और अबहिर्लेश्या की समय-समय पर पूज्यवरों ने अनुशंसा की है। पूज्यवरों का निरन्तर तुम पर अनुग्रह बरस रहा है।

बहुश्रुत बनने की तुम्हारी ललक वीतरागता को जगाए। मंगल मादि (महामहामहा) के मंगल साए में यह हंसते-खिलते नन्दनवन की कली फूल बन कर मुस्कुराती रहे। अपनी भीनी-भीनी संयम-सौरभ से सबको आप्यायित करती रहे।

इसी शुभाशंसा के साथ शिवास्ते पन्थानः, निरामया भव, नीरुजाभव, बहुश्रुतो भव, भद्रं-भूयात्, शुभं भूयात्, कल्याणं भूयात्।

०५-१२-९६ **साध्वी यशोधरा**

हिसार, कमला महल

अप्रत्यक्ष आभास

पिछले छह महीनों से वे समणी कुसुमप्रज्ञाजी से अनेक बार कह चुकी कि आप मेरे सारे कार्य को अच्छी तरह से देख लें, कहां क्या रखा है, समझ लें, क्योंकि जीवन का कोई भरोसा नहीं है। यहां साध्वियों को ज्ञात नहीं है।

एक बार तो उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा कि मैं पहले आपका अनुवाद नहीं सुनूंगी, सारा कार्य समझ लें। लेकिन सोचा भी नहीं जा सकता कि ऐसा अघटित घटित हो जाएगा क्या?

साध्वी सूरजकुमारीजी को भी उन्होंने एक दिन कहा—'हो सकता है, मैं आपसे पहले चली जाऊं।' साध्वीजी ने कहा—'जाने के दिन तो हमारे हैं। आपको अभी आगमों का बहुत कार्य करना है। श्रुत एवं संघ की सेवा करना है। आप हमारे सेवाकेन्द्र की जगमगती रोशनी हैं, रौनक हैं।'

मेरा चातुर्मास जोधपुर था। लम्बी यात्रा नहीं थी। अतः पूज्यप्रवर

के निर्देश से दस-पन्द्रह दिन उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला। उनकी दीक्षा के बाद हम प्रायः सुदूर यात्राओं में रहीं। सुखसाता के संवाद, अध्ययन-अध्यापन सम्बन्धी जानकारी या पूज्यप्रवरों के जो मंगल संदेश उपलब्ध होते उसमें वे यदा-कदा आनन्द में संभागी अवश्य बना लेती किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य संवाद नहीं के बराबर देती थी।

इस वर्ष दो-तीन बार लाडनूं से आनेवाली बहनें, मुमुक्षु बहनें और समणीजी से यही संवाद मिलते कि साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने पूछा है कि 'आप मुझे दर्शन कब देंगे?' मुझे भी आश्चर्य होता कि सिद्धप्रज्ञाजी के ऐसे संवाद कैसे आ रहे हैं पर मैं रहस्य समझ नहीं पाई।

संयमयात्रा का अन्तिम पड़ाव

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के वेदना जन्म से ही सहचरी बनी हुई थी। अन्तिम श्वास तक कदम से कदम मिलाकर उनके साथ चलती रही। उन्होंने भी समुद्भूत वेदना को समभाव से सहन कर अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणा की निर्जरा की। अन्तिम समय में भी वेदना ने भयंकर आक्रमण किया।

ग्रीष्म ऋतु, जुलाई का महीना। भयंकर लूएं चल रही थी। वे भी लू की चपेट में आ गई। रात्रि में लगभग ग्यारह-बारह बजे तक छः-सात डिग्री बुखार की गिरफ्त में आकर कोमा में चली गई।

सुबह उन्हें भिन्न सामाचारी में हॉस्पिटल ले जाया गया। काफी उपचार चले पर डॉक्टर विजय घोड़ावत को कामयाबी नहीं मिली। शाम से पहले ही सेवाकेन्द्र में लाकर उन्हें पुनः समसामाचारी में ले लिया गया। पारिवारिक एवं स्थानीय लोगों का चिन्तन रहा—इन्हें भिन्न सामाचारी में जयपुर या अन्य स्थान पर ले जाकर चिकित्सा कराई जाए। उन्होंने पूज्यवर को निवेदन करवाया। आचार्यप्रवर के पास यह समाचार पहुंचा।

मुझे जब इस बात का पता चला कि पारिवारिक लोग इन्हें दूसरी जगह ले जाने का चिन्तन कर रहे हैं। मैंने पूज्यप्रवर से विनम्र निवेदन किया—जब वे सचेतन अवस्था में लगभग अड़तीस वर्षों से भयंकर वेदना से जूझती रही पर हिमालयी संकल्प की धनी साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने आपद्धर्म का सहारा नहीं लिया तो फिर अब अचेतन अवस्था में उन्हें भिन्न सामाचारी में कहीं अन्यत्र चिकित्सा के लिए क्यों ले जाया जाए? पूज्य गुरुदेव के निर्देशानुसार उन्हें सेवाकेन्द्र में ही रखा जाए।

पूज्यवर के निर्देश से पारिवारिक लोगों ने अपना चिन्तन बदल दिया। इस अवसर पर साध्वी प्रमोदश्रीजी आदि साध्वियों ने मनोयोग से परिचर्या

की। कल्पनीय उपचार चला। करुणासागर गुरुदेव एवं मातृहृदया महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी ने मंगल संदेश प्रदान किए। तीर्थवत्सल गुरुदेव ने महती अनुकम्पा कर उनकी विशेषताओं का आकलन करते हुए ५ जुलाई २०१२ को 'शासनश्री' संबोधन से संबोधित किया।

लगभग अखंड जप चलता रहा। साध्वियां, समणीजी, मुमुक्षु बहनें पारिवारिकजन और उसमें भी विशेषतः संसारपक्षीय भान्जियों ने स्वाध्याय और जप में रात-दिन एक कर दिया, पर क्षणभर के लिए भी वे होश में नहीं आई। आखिर भावी को कौन टाल सकता है?

'भवितव्यं भवत्येव नालिकेरफलाम्बुवत्।'

समय-समय पर शासनगौरव मुनिश्री धनञ्जयकुमारजी ने भी दर्शन दिए। १० जुलाई को गुरुदेव के निर्देशानुसार मुनिश्री ने उन्हें सागारी अनशन पचखाया—देव गुरु धर्म की साक्षी से (तुम जब तक न मांगो) यावज्जीवन तीन आहार के त्याग कराए।

डॉ. घोड़ावत वर्षों से इनकी सेवा में निष्ठा से समर्पित रहे। डॉ. सुशीला समय-समय पर नब्ज देखती रही। डॉ. मुमुक्षु शान्ता, माणक और कमला भी सतर्क खड़ी थी।

रात्रि में लगभग ९ बजे साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने समाधिपूर्वक अन्तिम सांस ली। आंखें खुल गई। कहते हैं आंखों से, मस्तिष्क से जिसका सांस निकलता है, वह अच्छी गति में जाता है। उस समय भयंकर गर्मी में हल्की-सी फुहार ने ठंडक का अहसास कराया। वह स्वयं शीतल (उपशान्त कषाय) थी, जाते-जाते शीतल बयार छोड़ गई।

शासनसेवी कन्हैयालालजी छाजेड़ ने जैन संस्कार विधि से अन्तिम संस्कार किया। उन्होंने बताया—अन्तिम संस्कार के समय भी शीतल फुहार का अहसास हुआ। संसारपक्षीय भ्राता सम्पतराज एवं शान्तिलाल ने मुखाग्नि दी।

जगमगता दीया बुझ गया

लाडनूं के लोगों के मुख-मुख कर एक ही बात थी—साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी

की शव-यात्रा में जैसी उपस्थिति थी, वैसी विरल ही देखने को मिलती है। इतनी भीड़ यह बता रही थी कि उन्होंने आबालवृद्ध के दिलों में कितना स्थान बनाया है। आज सब रिक्तता का अनुभव कर रहे हैं।

सेवाकेन्द्र 'चेइयं' की बुजुर्ग साध्वियों ने कहा—'साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी हमारे सेवाकेन्द्र की रोशनी थी, रौनक थी। आज हमारे केन्द्र का एक जगमगता दीया बुझ गया। हंसती-खिलती कुसुमकलि मुरझा गई।'

शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञा की स्मृतिसभा में पूज्यवप्रवरों के उद्गार

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण

आर्हत् वाङ्मय में कहा गया है—गुणेहि साहू—गुणमुंच साहू।

आदमी गुणों के आधार पर साधु होता है और अवगुणों के या अगुणों के आधार पर वह असाधु बन जाता है।

आदमी का लक्ष्य रहे कि वह अच्छे गुणों को ग्रहण करे और जो अवगुण हैं, उन्हें छोड़ने का प्रयास करे। कहा जाता है, बूंद-बूंद से घट भरे। एक-एक बूंद से घड़ा भर जाता है। इसी तरह एक-एक गुण को ग्रहण कर लेने से आदमी के जीवन का घट भी भर सकता है। एक साधु का तो लक्ष्य रहना ही चाहिए कि मेरे जीवन में साधना का विकास हो, गुणों का विकास हो। ज्यों-ज्यों मेरा दीक्षापर्याय बढ़ता जा रहा है, मेरी साधना भी परिपक्व होनी चाहिए। मेरा कषाय जितना है, उसे और मन्द करने का प्रयास करूं, शुभ योगों में रहूं, संयम में रहूं, ऐसा चिंतन एक साधु के मन में आना चाहिए।

साधु के लिए महाव्रतों की साधना मूल है। उसके बाद साधु को स्वाध्याय, सेवा और तपस्या, इन तीनों को अथवा औचित्य के आधार पर किसी एक को मुख्यतया स्वीकार करना चाहिए। मेरे लिए स्वाध्याय उपयुक्त है या सेवा उपयुक्त है या तपस्या. उपयुक्त है।

गुरु मेरे से क्या अपेक्षा रखते हैं? छोटा साधु है उसे अभी आगम कण्ठस्थ करना चाहिए, सीखना करना चाहिए, स्वाध्याय करना चाहिए और वह कह दे मैं तो तपस्या में लगूंगा पर गुरु कहे नहीं अभी तपस्या विशेष

नहीं, अभी सीखना करो, आगम का अध्ययन करो, स्वाध्याय करो तो उसके लिए उपयुक्त है कि वह स्वाध्याय में अधिक ध्यान दे। जिसकी छोटी अवस्था है तथा जिसमें प्रतिभा है, उसके लिए आगम का स्वाध्याय करना अधिक उपयुक्त है। उस साधु को स्वाध्याय में निरत रहना चाहिए।

साधु के लिए यह सूक्त बड़ा आदर्श है—'सज्झायम्मि रओ सया', अर्थात् साधु सदा स्वाध्याय में रत रहे। यहां सदा का मतलब यह नहीं कि आहार करना भी छोड़ दे, नींद लो, जरूरी काम करो, इसके बाद जो समय मिलता है। उसका उपयोग स्वाध्याय में करना चाहिए।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का शरीरावसान हो गया। दीक्षा पर्याय में वे लगभग मेरे समान थी यानी मेरी दीक्षा के बाद में उनकी दीक्षा हुई थी। करीब छः-सात महीनों के बाद उनकी दीक्षा हुई थी। विक्रम सम्वत ३१ में ही मेरी दीक्षा हुई थी और विक्रम सम्वत ३१ में ही उनकी दीक्षा हुई थी। उनका नाम बड़ा अच्छा दिया गया—सिद्धप्रज्ञा और लगता है कुछ अंशों में जैसा उनका नाम था वैसी उनमें प्रज्ञा थी, प्रतिभा थी। वह ज्यादा यात्रा नहीं कर सकी, क्योंकि शरीर का योग नहीं था। उनको लाडनूं में रखा गया, क्योंकि शरीर की अनुकूलता नहीं थी। हार्ट की तकलीफ थी और शरीर की अनुकूलता न होने का एक उजला पक्ष यह लिया जा सकता है, उनको लाडनूं में ज्यादा रहने का मौका मिल गया। लाडनूं में ज्यादा रहने का मौका मिलने के कारण उन्हें स्वाध्याय में तथा आगम आदि के कार्य में ज्यादा समय लगाने का मौका मिला। अगर उनको न्यारा में भेज दिया जाता तो सम्भवतः वो इतना समय नहीं लगा पाती, पर नियति भी अपने ढंग से काम करती है। उनको लाडनूं में रहने का मौका मिला, उसका उन्होंने लाभ उठाया और आगम आदि के कार्य में लगी। उनकी विशिष्ट प्रतिभा थी।

जैनपारिभाषिक शब्दकोष का काम चल रहा था परम पूज्य महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में। उनके निर्देशन में वे भी उस कार्य से जुड़ी हुई थी। वे अस्पष्ट व्याख्या को यदा-कदा भेजती रहती थी कि ऐसा अर्थ हो तो कैसा रहे? यह हो तो कैसा रहे? पत्र कभी हमारे पास तो कभी गुरुदेव के पास पहुंचते रहते थे। हर व्यक्ति में इतना क्षयोपशम नहीं होता परन्तु वे कोई पूर्व जन्म का क्षयोपशम लेकर आई थी, ऐसा लगता है। आगम में तथा

ज्ञानाराधना में निरत रहने वाली साध्वी थी। मैंने देखा परम पूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी के मन में भी उनका विशेष स्थान था। वे सिद्धप्रज्ञाजी को महत्त्व दिया करते थे कि बहुत अच्छी साध्वी है। उनका गुरुदेव के मन में स्थान था।

उल्लेखनीय है कि ज्ञानाराधना तो एक पक्ष था उनके जीवन का। उसके साथ उनकी साधना भी अच्छी थी। कषाय-मंदता की साधना भी अच्छी थी। उन्होंने कषाय-मंदता की साधना इस जीवन में कितनी की और पीछे से कितनी लेकर आई थी, यह तो पूरा लेखा-जोखा करना कठिन है। पर कहीं भी हो, पिछले जन्म में साधना की हो या यहां की हो, पर उनमें कषाय-मंदता काफी थी, ऐसा अनुमानित हो रहा है।

उनमें व्यवहार की शालीनता तथा सेवा की भावना थी। यद्यपि वह कोई अग्रणी नहीं थी। उन पर कोई जिम्मेदारी भी नहीं थी कि क्षेत्र की सम्भाल करे, पर साध्वियों ने बताया कि वे रुचि लिया करती थीं। श्रावकों को दर्शन देने में या संथारे में सुनाने में और लाडनूं में साध्वियों का कोई संथारा होता तो साध्वियों को सहयोग देने में उनका योगदान रहता था। एक ऐसी साध्वी जो संघ में आई थी और कुछ जल्दी ही चली गयी और यों कहूं तो हार्ट कि मरीज थी, इतने वर्षों तक रह कैसे गयी वो भी खास बात है।

मैंने उनको संदेश दिया और 'शासनश्री' साध्वी के रूप में स्वीकार किया और जहां तक मुझे जानकारी है, इतनी छोटी अवस्था में भी सम्भवतः अन्य किसी साध्वी को 'शासनश्री' के रूप में सम्बोधित नहीं किया। उनको मैंने इतनी छोटी अवस्था में भी 'शासनश्री' के रूप में सम्बोधित किया था। यद्यपि संबोधन तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। उनकी अपनी गुणवत्ता उनको आगे बढ़ाने वाली होती है।

जो बहुत पांडित्यपूर्ण हैं, उनकी कभी अवमानना नहीं होनी चाहिए और उनका सम्मान हो यह ज्यादा श्रेयस्कर है और न हो तो भी गुणी आदमी तो अपने आप में गुणवान ही होता है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी एक ऐसी साध्वी थी जो अनेक विशेषताओं से सम्पन्न साध्वी थी। जब भी आगम कार्य का अथवा प्राचीन साहित्य के कार्य का इतिहास लिखा जाएगा

तो साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी का नाम उसमें काफी अच्छे रूप में आ सकेगा, ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है।

दोनों बहनों का योग भी विशेष है। साध्वी यशोधराजी उनकी बड़ी बहन हैं और हमारे धर्मसंघ में एक प्रबुद्ध साध्वी के रूप में हैं। मैं यदि साध्वियों के सिंघाड़ों में कुछ थोड़े आधुनिक रूप में वक्तव्य देने वाली साध्वियों के अग्रणियों के नामों की सूची बनाऊं तो उनमें एक नाम साध्वी यशोधराजी का उल्लिखित किया जा सकता है। वो भी काफी प्रबुद्ध, विदुषी और शासन भक्ति वाली साध्वी है। मुझे शालीन साध्वी प्रतीत हुई और उनके मन में आचार्यों के प्रति समर्पण का भाव है। दोनों ही बहनों का कोई योग है, धर्मसंघ में आई हैं। यशोधराजी तो लम्बे समय तक सेवा देती रहें।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी चली गई। इनके पिताजी भी दीक्षित हुए थे जो मुनि अमृतानंदजी थे। इनकी भतीजी भी अमृतयशाजी, जो साध्वी फूलकुमारीजी के साथ है। एक परिवार से अनेक व्यक्ति हमारे धर्मसंघ में दीक्षित हैं। दादां-पोती दोनों की साथ दीक्षा हुई थी। चान्दकुमारीजी भी गोलछा परिवार की हैं। हमारे धर्मसंघ की एक अच्छी साध्वी हैं।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी को परम पूज्य गुरुदेव तुलसी के मुखकमल से दीक्षित होने का मौका मिला। गुरुदेव तुलसी के शासन काल में रही फिर गुरुदेव महाप्रज्ञजी के शासन काल में उन्हें काम करने का मौका मिला और फिर हमारे कार्यकाल में रहने का मौका मिला। तीन-तीन आचार्यों को उन्होंने देख लिया परन्तु कुछ जल्दी ही चली गई। ७० वर्ष भी नहीं ले सकी और चली गई। हमारा यह मधुर उपालंभ है कि जो काम सौंपा, उसे किए बिना कैसे चली गई? हमने जो आगम कार्य का इंगित किया था, उसको बीच में छोड़ कर, पूरा किए बिना कैसे चली गई? एक ऐसी साध्वी जिसने ज्ञान को मानो एक अपना ध्येय बना लिया था। ऐसी साध्वी की हो सके तो एक छोटी-सी जीवनी आनी चाहिए ताकि उसके बारे में औरों को भी आसानी से जानकारी हो सके।

मेरे दिमाग में साध्वियों की त्रिमूर्त्ति है—सिद्धप्रज्ञा, साध्वी विमलप्रज्ञा, साध्वी निर्वाणश्रीजी इन तीन साध्वियों की त्रिमूर्त्ति थी। काम करने लाडनूं में रहती थीं। संस्कृत भाषा की दृष्टि से भी इन साध्वियों का अच्छा विकास है।

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी में स्फुरणा थी। वे अपनी स्फुरणा से काम करती थी। इस तरह वो अनेक गुणों से सम्पन्न साध्वी थी जो हमारे धर्मसंघ में आई थी। लगभग ३७-३८ वर्षों तक धर्मसंघ को सेवा दी और धर्मसंघ ने उनको सेवा दी। एक समय आया कि वो अलविदा कहकर चली गई।

ऐसी साध्वी के प्रति हमारे मन में बहुत ही आह्लाद व प्रमोद का भाव है, खैर यह तो नियति का योग है। दुःख करने से भी क्या हो सकता है। हमें तो आदमी के गुणों पर ध्यान देकर उनको आत्मसात करने का प्रयास करना चाहिए। आज हम शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी के उद्गार

वे साधु-साध्वियां सौभाग्यशाली हैं जिन्हें तेरापंथ धर्मसंघ में साधना करने का सौभाग्य मिला है। वे साधु-साध्वी और भी सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने धर्मसंघ में जिन प्रवर्द्धमान परिणामों के साथ संयमयात्रा शुरू की, उतने ही प्रवर्द्धमान परिणामों से यात्रा सम्पन्न कर ली। तेरापंथ का इतिहास बड़ा विलक्षण एवं गौरवशाली इतिहास है। जिसमें सैंकड़ों-सैंकड़ों साधु-साध्वियों ने अपनी संयमयात्रा को समाधिपूर्वक सम्पन्न किया है। साधना के द्वारा जीवन को सफल बनाया। उसी शृंखला में एक नाम है—शासनश्री सिद्धप्रज्ञाजी का। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी प्रारंभ से ही एक विवेकसम्पन्न साध्वी के रूप में हमारे धर्मसंघ में प्रतिष्ठित रही है। उनमें संघ के प्रति गुरु के प्रति निष्ठा एवं समर्पण का भाव प्रारंभ से ही था। मुझे याद है। गुरुदेवश्री के मन में बहुत वर्षों से तीसरी श्रेणी की कल्पना विविध रूपों में सामने आ रही थी। दिल्ली में इन लोगों की दीक्षा का प्रसंग उपस्थित हुआ, उस समय गुरुदेव चाहते थे कि तीसरी श्रेणी स्थापित हो जाए, इस दृष्टि से दीक्षित मुमुक्षु बहनों से बात की गई तो सिद्धप्रज्ञाजी मुमुक्षु सुशीला को भी पूछा गया तो उन्होंने कहा कि जैसे गुरुदेव की दृष्टि रहेगी मैं उसी रूप में रह लूंगी यानि उस समय भी गुरु के प्रति समर्पण भाव व्यक्त किया।

साध्वी सिद्धप्रज्ञा के बारे में बहुत बातें बताई गई और ऐसा मानना चाहिए कि जो व्यक्ति गुणवान होता है, उसके गुणों की अनुमोदना करते-करते

कितना ही कहा जाए उसका माप नहीं होता है। उनके बारे में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। ऐसा मानना चाहिए कि उनमें गुरु के प्रति समर्पण के साथ सहनशीलता थी। उनमें शारीरिक दृष्टि से ही नहीं मानसिक दृष्टि से भी सहनशीलता थी। शारीरिक कष्ट को उन्होंने सहजता से सहन किया, उसी प्रकार उन्होंने अपने मन को भी उद्विग्न नहीं होने दिया। उनकी शांति भी विलक्षण थी। वे हमेशा शांति के साथ रही। जिस रूप में भी रही उन्होंने सबके साथ सामंजस्य साधने का प्रयत्न किया। सामान्यतः व्यक्ति एक सिंघाड़े में रहता है, दो में रहता हैं। लाडनूं में रहते उन्हें कई सिंघाड़ों का योग मिला। इतने सिंघाड़ों में चाहे किसी भी प्रकार की प्रकृति है, उन्होंने जिस समन्वय, सौहार्द, सामंजस्य के साथ अपना समय व्यतीत किया और अपना काम किया, वास्तव में उदाहरण है। लम्बे कार्यकाल में, अनेक प्रकार की स्थितियां आती रही लेकिन उन्होंने बिना निर्देश, किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। वह अपने काम में लगी रहती। नहीं तो बहुत बार ऐसा होता है कि यहां से महत्त्व प्राप्त व्यक्ति दूसरों पर हावी-सा रहता है। लेकिन साध्वी सिद्धप्रज्ञा में यह विशेष बात थी कि उन्होंने कभी भी किसी के बीच जाने का प्रयत्न नहीं किया।

वे सचमुच में श्रुतसाधिका थी। उनका जीवन अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग में बीता। उन्होंने धर्मसंघ की सेवा की। मुझे याद है परम पूज्य गुरुदेव कई बार कहते थे कि मैं चाहता हूं कि हमारी साध्वियों का नाम भी आगमकार्य की शृंखला में आए। सौभाग्य की बात, साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने गुरुदेव के उस स्वप्न को साकार करने में अपना योगदान दिया है। परमपूज्य आचार्यवर ने भी कई साध्वियों का उल्लेख किया यह हमारे लिए गौरव की बात है कि तेरापंथ की साध्वियां आचार्यों की दृष्टि के अनुरूप आगम कार्य में संलग्न हैं और अपने समय का, अपनी शक्ति का उपयोग कर रही हैं। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने आगम व अन्य दूसरे कार्य भी किए और इतना ही नहीं अगर वहां रहने वाली कोई भी साध्वी हो यदि वह चाहती कि हमें आगम का स्वाध्याय करना है, अध्ययन करना है, तो वे अध्ययन कराने में भी बराबर निरत रहती थी। आगम या किसी भी ग्रन्थ के स्वाध्याय में कभी कोई प्रमाद नहीं किया। जो भी प्रसंग आया उसका पूरा उपयोग

किया, तो ऐसी एक विशिष्ट साध्वी का स्थान रिक्त हो गया।

मैं तो आचार्यवर से एक अनुरोध करूंगी कि साध्वी समाज को और अधिक शक्ति प्रदान कराएं आशीर्वाद दिराएं जो साध्वी चली गई है, उसका स्थान ले सके, उस क्षेत्र में आगे बढ़ सके। हम यह मानते हैं कि तेरापंथ धर्मसंघ में साधना करने के साथ-साथ व्यक्ति को अपनी प्रतिभा का उपयोग करने का मौका मिलता है। विकास करने का मौका मिलता है। हम धर्मसंघ में हैं इसलिए कुछ कर सकते हैं। संघ का उपकार है। आचार्यों का उपकार है। आचार्यवर हमको मौका देते हैं, तो हम कुछ कर सकते हैं। संघ के उपकार को हम कभी भी भूल नहीं सकते। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी की शृंखला में हमारी और भी साध्वियां तैयार हों, आचार्यवर ऐसा आशीर्वाद प्रदान कराएं।

मंत्री मुनिश्री सुमेरमलजी स्वामी

धर्मसंघ महान है। यहां अनेक प्रतिभाएं उभरती हैं। अपना काम करती हैं। साधना के साथ धर्मसंघ को भी आगे बढ़ाती हैं। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी एक ऐसी साध्वी थी जो श्रुत की आराधना में निरंतर लगी रही। शरीर की अस्वस्थता के बावजूद उनकी श्रुत की आराधना बेजोड़ रही। उन्होंने धर्मसंघ को बहुत कुछ दिया है। यद्यपि हर व्यक्ति धर्मसंघ से लेता है। उन्होंने भी लिया है। किन्तु केवल लिया ही नहीं दिया भी है। जो साधक धर्मसंघ से लेकर कुछ न कुछ देने में सफलता प्राप्त करता है, वह साधक धर्मसंघ से उऋण होने का सफल प्रयास करने वाला बन जाता है। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी ने भी धर्मसंघ को काफी कुछ दिया है। उन ग्रन्थों को जो पढ़ेंगे उन्हें ज्ञात होगा कि उन्होंने कितना श्रम किया है।

उनका जन्म लाडनूं में हुआ। गोलछा परिवार लाडनूं के श्रद्धालु परिवारों में अपना स्थान रखता है। उस परिवार में उनका जन्म हुआ और दीक्षा के बाद जल्दी ही लाडनूं उनका प्रवासकेन्द्र बन गया, विचित्र बात है। साधना करते-करते लाडनूं में ही उनका निर्वाण हुआ। अन्तिम श्वास भी लाडनूं में लेने का अवसर मिला। एक दृष्टि से देखा जाए तो प्रतिभाशाली साध्वी की कमी हुई है। हालांकि धर्मसंघ में कभी कमी नहीं रहेगी। हमारी अनेक प्रतिभा सम्पन्न साध्वियां हैं वे उस कमी को पूरा करेंगी। किन्तु आज तो

यही कहना होगा कि साध्वी सिद्धप्रज्ञा का स्वर्गवास क्या हुआ एक प्रतिभा सम्पन्न साध्वी धर्मसंघ से विदा हो गई। हम उसके प्रति मंगलकामना करते हैं। अनुमोदना करते हैं।

मुख्य नियोजिका विश्रुतविभाजी

'शासनश्री सिद्धप्रज्ञाजी' का शरीर मानो ज्ञान के परमाणुओं से बना हुआ था। वह ज्ञान की परिक्रमा करती थी, ज्ञान की परिधि में ही रहती थी। उनके चारों ओर आगम, आगम के व्याख्या ग्रन्थ-निर्युक्ति, भाष्य, वृत्ति आदि से संबद्ध ग्रंथ रहते थे। वह उनको देखती रहती थी। जब श्रीभिक्षु आगमविषयकोश संपादित होकर पूज्य गुरुदेव के चरणों में प्रकाशित होकर समर्पित हुआ। गुरुदेव ने अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव किया और जब डॉ. टांटिया ने उसको अपने हाथों से देखा तो उन्होंने गुरुदेव से निवेदन किया कि मुझे प्रसन्नता हो रही है कि आपके संघ में साधु तो आगम के क्षेत्र में कार्य कर ही रहे हैं किन्तु साध्वियां भी इतना गहरा कार्य कर रही हैं। आगमविषयकोश का यह पहला भाग था। उसमें मूलसूत्रों का चयन किया गया था। चार मूलसूत्रों के साथ-साथ उनका व्याख्या साहित्य भी समाहित है। व्याख्या साहित्य के आधार पर विषय का वर्गीकरण किया गया है इस कोश शृंखला का दूसरा भाग उससे भी महत्त्वपूर्ण भाग है। दूसरे भाग में छेदसूत्र और उनके व्याख्या साहित्य के आधार पर विषय वर्गीकृत हैं। ये दोनों ग्रन्थ अपने आपमें महत्त्वपूर्ण हैं, जो साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी की प्रतिभा का प्रज्ञापन कर रहे हैं। उन्होंने किस प्रकार इतनी गहराई में जाकर अध्ययन किया और इन ग्रन्थों को सम्पादित किया। इन ग्रन्थों के निर्माण में आगममनीषी मुनि दुलहराजजी स्वामी का भी बहुत बड़ा योग था। मैंने कई बार आचार्य महाप्रज्ञ के सामने सुना, वे कहते थे—साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी की तो सचमुच प्रज्ञा सिद्ध है। वह अनुवाद करके मुझे दिखाती है लेकिन मुझे नहीं लगता था कि उनके अनुवाद में कहीं कोई परिवर्तन करूं। सचमुच में गौरव होता है ऐसी साध्वी को प्राप्त करके, जिनके पास में ज्ञान था और उत्तरोत्तर उस ज्ञान राशि को बढ़ाने का प्रयत्न किया।

उनके पास केवल ज्ञान ही नहीं था, श्रद्धा भी थी। उनके भीतर गुरुदेव

के प्रति श्रद्धा थी, संघ के प्रति निष्ठा के भाव थे। गुरुनिष्ठा और संघनिष्ठा के कारण ही वह सफलता के पायदान तक पहुंची और वह सफलता के शिखर को छू सकी।

आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में जैनपारिभाषिक शब्दकोश का निर्माण किया जा रहा था। वह कार्य भी अपने आप में भारी भरकम था। हम यात्रा में भी उस कार्य को कर रहे थे। जैसे-जैसे हमारा कार्य तैयार होता, हम उसे लाडनूं भेज देते और लाडनूं में वह कार्य सिद्धप्रज्ञाजी के पास पहुंच जाता। हम निश्चिंत हो जाते कि उनके पास पहुंच गया। वह उसे जिम्मेदारी से सही रूप में नियोजित कर देती। प्रूफ देखना, उन्हें सही ढंग से संपादित करना आदि-आदि कार्य उनके जिम्मे रहते थे। चूंकि उनके साथ में गुरुदृष्टि जुड़ी हुई थी, इसलिए वह अपना कर्त्तव्य समझ करके उस कार्य को करती थी। केवल कार्य ही नहीं करती थी, वह उस कार्य से संबंधित अनेक प्रश्न हमारे सामने प्रस्तुत करती। आचार्यवर व युवाचार्यश्री उस विषय पर विमर्श करते, जहां अपेक्षा होती वहां परिवर्तन करते। इस प्रकार इस कार्य में हमको उनका सहयोग मिला।

जब परम पूज्य आचार्य महाप्रज्ञजी ने संस्कृत वाङ्मय में कार्य के संदर्भ में मुझे निर्देश दिया और कहा हम तो यात्रा में हैं। साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी लाडनूं में है, तुम उनको अपने साथ में जोड़ लो तो तुम्हारा काम आसान हो जाएगा। सचमुच में मैंने आचार्यवर की दृष्टि की आराधना करके साध्वी सिद्धप्रज्ञा को हमारे कार्य की सम्पूर्ण योजना से अवगत कराया। लाडनूं में रहते हुए भी उन्होंने इतना अच्छा कार्य का सम्पादन किया। हमारा बराबर सम्पर्क रहता था।

वे सूक्ष्म प्रतिभा की धनी थी। अनेक जिज्ञासाएं करते-करते वे कभी व्याकरण की दृष्टि से जिज्ञासा करती तो कभी लेखन की दृष्टि से जिज्ञासा करती। उन जिज्ञासाओं के कारण हमारे ग्रन्थ का परिष्कार हुआ। इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय का जो भाग आया है उसमें भी उनका बहुत श्रम लगा है। उन्होंने अपने श्रम को सार्थक बनाया है।

वह गुरुदृष्टि की आराधना के प्रति सदा सजग रहती थी। जो दृष्टि मिल गई, वह उनके जीवन की सृष्टि बन जाती थी। वह उनके लिए प्राणतत्त्व

था। उन्हें ऐसा लगता, आचार्यवर के मुखारबिन्द से निकला एक-एक शब्द मेरे शरीर में प्राणों का संचार कर रहा है। वह इस बात को मानती थी कि मुझे यह लम्बा जीवन प्राप्त हुआ है, वह आचार्यों का ही अनुग्रह है। यदि आचार्यों का अनुग्रह मुझे नहीं मिलता तो मैं इतने लम्बे समय तक तेरापंथ धर्मसंघ की सेवा नहीं कर पाती। उनके मन में ज्ञान के प्रति निष्ठा थी। संघ और गुरु के प्रति निष्ठा थी। जिस व्यक्ति में निष्ठा होती है वह सबके लिए अनुकरणीय बन जाता है। आज के इस पवित्र अवसर पर मुझे उनकी स्मृति हो रही है। मैं यही मंगलकामना करती हूं कि वे अपनी चेतना का ऊर्ध्वारोहण करती हुई आगे-से-आगे बढ़ती रहें।

अमृत संदेश

सिद्ध अर्थात् परिपक्व होती है प्रज्ञा जिसकी, वह सिद्धप्रज्ञा है। वह कभी किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होती। स्थित होती है।

आमेट — आचार्य तुलसी

१२-०७-८५

'अप्पुस्सुए अबहिल्लेसे'
साध्य अपणो साधती,
सिद्धप्रज्ञा ज्ञान दरसण,
चरणवर आराधती

आमेट — आचार्य तुलसी

२८-०७-१९८५

सिद्धा प्रज्ञा भवेत् यस्याः,
सिद्धप्रज्ञा तु सा मता।
वकारत्रयवर्तित्वे,
सकारत्रयसाधनात् ॥
(वकार-विद्या, विनय, विवेक)
(सकार-समता, सेवा, सहिष्णुता)

१-०३-८७ — गणाधिपति तुलसी

साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा और साध्वियां जैनविश्वभारती में बड़े मनोयोग से काम कर रही हैं। संत तो कर ही रहे हैं, साध्वियां भी वहां बहुत व्यवस्थित रूप से काम कर रही हैं। उन्हें इसी तरह से मन लगा कर काम करना है।

साध्वियों के कार्य से मैं संतुष्ट हूं। प्रसन्न हूं। क्षेत्रीय दूरी को साध्वियां दूरी क्यों मानें? मैं कहीं भी रहूं, उनके मन में हूं। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए अपने ढंग से काम करती रहो। समणियों तथा मुमुक्षु बहनों को प्रेरणा देती रहो तथा उनकी आध्यात्मिक सार संभाल करती रहो।

सभी साध्वियां बड़े स्नेह, सौहार्द और श्रमशीलता से काम कर रही हैं, इसकी मुझे प्रसन्नता है।

पाली **आचार्य तुलसी**

२१-०७-१६६०

साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा आदि साध्वियां वहां अच्छे ढंग से काम कर रही हैं और करें। यद्यपि उनका मन छटपटा रहा है आने के लिए, पर सब काम देश काल के अनुसार ही होगा। अपने आपको दूर क्यों मानती हो, तुम सब हमारे एकदम निकट हो। खूब मानसिक प्रसन्नता से स्वयं का समणियों का मुमुक्षु बहनों का एवं विश्वभारती का यथासम्भव सावधानीपूर्वक ध्यान रखना। अर्हत्‌वंदना का प्रयोग सावधानीपूर्वक होना चाहिए।

कंटालिया **आचार्य तुलसी**

२४-१२-१६६०

गुरुदेव के शब्द रत्न

विमल प्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा का योगक्षेम वर्ष अभी तक पूरा नहीं हुआ। सिद्धप्रज्ञा आगमकोश का बहुत काम कर रही है। बहुत कमजोर है, अस्वस्थ रहती है। आगम काम से ही जी रही है।

(आगम काम के लिए ही जी रही है।)

लाडनूं

१९९२

शिष्या सिद्धप्रज्ञाजी!

तुम अस्वस्थ होते हुए भी स्वस्थ हो। तन चेतन का भेद स्पष्ट दिखाई देता है। तन अस्वस्थ है और चेतन स्वस्थ है। श्रद्धा का बल कितना प्रबल होता है। इसका भी उदाहरण देखना हो तो दिखाई देता है।

आगमकोश के काम में साध्वी विमलप्रज्ञा के साथ संलग्न हो, संलग्न रहना।

'आरोग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु।'

इस मंत्र का अजपाजप करती रहना।

सुजानगढ़ — **गणाधिपति तुलसी**

२२-०२-९४

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

तुम्हें जो सिद्धि मिली है। सहिष्णुता और दृष्टिकोण मिला है, वह प्रेरणा बने।

तारानगर
२०००

आचार्य महाप्रज्ञ

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

तुम्हारी सहिष्णुता, विनम्रता, सहज सरलता और कर्त्तव्यनिष्ठा प्रज्ञा को सिद्ध बनाने वाली है। स्वास्थ्य के लिए संकल्प और आगमसेवा करती रहो।

लाडनूं

आचार्य महाप्रज्ञ

साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा आदि का विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए यहां रहना हुआ है, उस कार्य में पूरी तन्मयता से संलग्न रहना है। उसमें आनन्द का अनुभव करना है।

इन सूत्रों पर विशेष ध्यान देना है—

१. आत्मीय निरीक्षण, जिसमें स्वयं को समझने का मौका मिले। अहंकार और हीनभावना न बढ़े।
२. विनम्रता, सहिष्णुता और पारस्परिक सौहार्द का विकास।
३. अध्ययन और ध्यान का संतुलन।

युवाचार्य महाप्रज्ञ

साध्वी विमलप्रज्ञा, सिद्धप्रज्ञा!

तुम लोग आगमकोश का काम बड़ी तन्मयता से कर रही हो, यह बहुत अच्छा संवाद है। कार्य के प्रति समर्पण होना सफलता का पहला चरण है। कार्य निरन्तर आगे बढ़े, अध्ययन करने वाली साध्वियां अध्ययन में लीन रहें, साथ-साथ आगम कार्य में भी सहयोग करें।

पाली **युवाचार्य महाप्रज्ञ**

५-०६-१६६१

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

मुनि दीक्षा सर्वोत्तम उपलब्धि है। वर्तमान युग में इसका और अधिक मूल्य बढ़ गया है। असहिष्णुता, अधैर्य और उच्छृंखलता से उपजने वाली मानसिक समस्याओं ने मानसिक और भावनात्मक तनाव की सृष्टि का निर्माण किया है। इस अवस्था में मुनि दीक्षा में जीने वाली साध्वियां मानसिक शांति और आनन्द का अनुभव कर रही हैं—यह जैनशासन और भिक्षुशासन का प्रताप है।

साध्वी सिद्धप्रज्ञा! मुनि दीक्षा के पच्चीस वर्ष पूर्ण कर छब्बीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही हो। तुम्हारा अग्रिम वर्ष उत्तरोत्तर विकास का वर्ष बने। तुम ज्ञान, दर्शन और चारित्र की समन्वित साधना करो। सेवा और शासन प्रभावना के क्षणों में जीती हुई स्वयं चित्तसमाधि का अनुभव करो और दूसरों को चित्तसमाधि के क्षणों में जीने की प्रेरणा दो।

मंगलकामना।

महरौली **आचार्य महाप्रज्ञ**

२२-१०-१६६६

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

सुखपृच्छा!

आगमकार्य की दृष्टि से यह निर्देश दिया जा रहा है कि तुम साध्वी शशिप्रभा आदि के साथ इधर आ जाओ। बीदासर चातुर्मास में तुम्हें साथ में ही रखने का निर्णय किया है।

छापर **आचार्य महाप्रज्ञ**

१५-६-२००१

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहना। तुम्हारी स्वाध्यायशीलता निरंतर बढ़ती रहे। एकल कार्य की दिशा, कार्य का श्रम स्वास्थ्य के अनुकूल चले। समणी उज्ज्वलप्रज्ञा का सहयोग मिल रहा है। उसका भी यथेष्ट उपयोग करती रहो। वह मनुष्य कितना भाग्यशाली होता है जो शारीरिक रोग की स्थिति में भी अपने आप में निरोगता की अनुभूति कर ज्ञानाराधना में लगा रहता है।

अहमदाबाद **आचार्य महाप्रज्ञ**

३-०७-२००२

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

तुम्हारी सहनशक्ति और सदा प्रसन्न रहने की मनोवृत्ति अस्वास्थ्य को भी स्वास्थ्य में बदल देती है। जिस निष्ठा के साथ आगमकोश का कार्य कर रही हो वह सुखद आश्चर्य है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहो और तुम्हारी निष्ठा बढ़ती रहे।

कोबा, अहमदाबाद **आचार्य महाप्रज्ञ**

१०-११-२००२

साध्वी सिद्धप्रज्ञा!

तुम्हारा स्वास्थ्य स्वस्थ होगा। तुम आगम कार्य में संलग्न रही हो और आज भी कर रही हो। शरीर से दुर्बल हो पर मनोबल खूब अधिक है। इसलिए काम चलता रहे। समणी मुदितप्रज्ञा वहां आ रही है। जैनपारिभाषिक शब्दकोश के प्रूफ संशोधन आदि में तुम्हारा सहयोग मिलता रहेगा।

अध्यात्मसाधना केन्द्र, दिल्ली — **आचार्य महाप्रज्ञ**

२१-०१-०५

परम पूज्य आचार्यप्रवर ने अनुग्रह वर्षा करते हुए फरमाया—समाधि में रहना। तुम तो समाधि में ही हो। स्वास्थ्य का ध्यान रखना। सावधान रहना। लं (मंत्र) का जाप करती हो क्या? इसका जाप बहुत अच्छा रहेगा।

ज्ञानमुद्रा में स्वयं लं लं का उच्चारण करते हुए फरमाया—इसका दिन में दो बार सुबह-शाम १०-१० मिनट जप करना, बहुत अच्छा रहेगा, ठीक रहेगा।

जैनविश्वभारती, लाडनूं

३-०३-२००५

साधितो विनयेनात्मा, सिद्धप्रज्ञाऽजनि स्वतः।
विधायकमनोभावाः, स्वाध्यायेऽर्पितचेतना ॥
रुजः प्रभावमाक्रम्य, नीरुजाऽऽगममन्थने।
निदर्शनमिवाऽऽभाति, प्रसीदामि मुहुर्मुहुः ॥

रोहतक — **आचार्य महाप्रज्ञ**

२३-१२-२००५ — साध्वी सिद्धप्रज्ञाकृते

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

तुम्हें प्रसन्नता का वरदान सहज लब्ध है। हर स्थिति में संतुलन रखना तुम्हारा निसर्ग बना हुआ है। शारीरिक अवस्था या अस्वस्थता को गौण कर जो कार्य करती हो, सुखद स्थिति है।

तुम्हारा आध्यात्मिक विकास सतत प्रवर्धमान रहे। कोश का कार्य यथावकाश चलता रहे। साध्वी विमलप्रज्ञा का योग नहीं है, फिर भी कार्य बराबर चले।

खूब समाधि में रहो।

आचार्य महाप्रज्ञ

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

सुखपृच्छा।

आपकी प्रतिभा का अच्छा उपयोग होता रहे। स्वास्थ्य का ध्यान रखें। खूब चित्तसमाधि रखें। साध्वी यशोधराजी से केन्द्र के संवाद जाने जा सकेंगे।

मंगलकामना।

तारानगर **युवाचार्य महाश्रमण**
१४-२-२०००

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

स्थिरवासिनी-सी बनी हुई हो। आत्मस्थता बढ़ती रहे। स्वस्थता का विकास हो। प्रतिभा का सम्यक् उपयोग होता रहे।

लाडनूं **युवाचार्य महाश्रमण**
१३-११-२०००

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

स्वाध्याय करने वाली साध्वी है। परिस्थिति ने पूरा सहयोग नहीं दिया इसलिए विहार में कठिनाई उत्पन्न हो गई। एक जगह रहकर ये स्वाध्याय के द्वारा संघ की सेवा कर रही हैं।

मंगलकामना।

मुम्बई युवाचार्य महाश्रमण

२२-०२-२००३

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

तुम्हारी निर्मलप्रज्ञा प्रशस्य है। अपनी प्रज्ञा का पूरा उपयोग करती रहो। स्वास्थ्य का ध्यान रखो।

लाडनूं युवाचार्य महाश्रमण

२-०३-२००५

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी स्वाध्याय में रमण करनेवाली साध्वी रही है। गुरुदेव महाप्रज्ञजी का उनके प्रति अच्छा अनुग्रह भाव रहता था। आगम आदि कार्य संपादन करने में उनका योगदान रहा है। अब खूब आत्मस्थ रहें और स्वस्थ होकर फिर खूब अच्छा काम करें। उनकी विशेषताओं को सामने रखकर उन्हें 'शासनश्री' साध्वी सिद्धप्रज्ञा के रूप में संबोधित कर रहे हैं। साध्वी प्रमोदश्रीजी आदि साध्वियों का योग उनके स्वास्थ्य लाभ में सहयोगी बने।

शुभाशंसा।

जसोल आचार्य महाश्रमण

५-७-२०१२

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

अस्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन की जीवंत प्रतीक हो तुम! तुम्हारी संकल्प शक्ति अटूट है। तुम्हारा आस्थाबल पुष्ट है। तुम्हारा धैर्य अविचल है। तुम्हारा विश्वास कर्म में है, तुम निरंतर गतिशील हो। तुम्हारे शरीर की स्थिति देखने वाले द्रवित हो जाते हैं, पर तुम चट्टान की तरह मजबूत हो। शारीरिक दुर्बलता के कारण तुम यहां नहीं आ सकी, पर भावधारा में यहां के प्रतिबिम्ब उभरते ही होंगे। तुम्हारी संकल्पशक्ति, कर्मजाशक्ति और आस्थाशक्ति की नई स्फुरणा के लिए मंगलभावना।

बीदासर — साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

भाई कमलेश लाडनूं जाकर आये उन्होंने वहां जैनविश्वभारती में कार्यरत साध्वियों के संवाद सुनाये। साध्वी विमलप्रज्ञाजी और सिद्धप्रज्ञाजी पूरी तन्मयता से आगमकोश का कार्य कर रही हैं। उनकी अध्यवसायशीलता के कारण ही उनको ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य में नियोजित किया गया है। विद्यार्थी साध्वियों का अध्ययन अभी शुरू नहीं हुआ फिर भी वे अपनी पूर्व तैयारी के रूप में अध्ययन में संलग्न हैं तथा आगमकोशवाले काम में भी कुछ समय लगाती हैं। यह विकास का रास्ता है।

लेखन, वक्तृत्व, स्वाध्याय, ध्यान आदि का क्रम भी नियमित रूप से चलता रहे, यह अपेक्षित है। समणियां बता रही थीं कि उनको भी तुम लोगों का उचित मार्गदर्शन मिल जाता है। सिद्धप्रज्ञाजी ने संस्कृत श्लोक (भावविंशिका) लिखे, वे पसन्द आये। समय-समय पर संस्कृत लिखने का अभ्यास रखना है। संभव हो तो कोई काव्य लिखना शुरू कर दो।

गुरुदेव का सबसे बड़ा सान्निध्य आपकी दृष्टि आराधना में है। तुम लोग कहीं भी रहो, यहां की दृष्टि में हो। अधिक से अधिक काम कर अपनी कार्यजा क्षमता को बढ़ाओ। प्रसन्न, स्वस्थ, समाधिस्थ और आश्वस्त रहो। तुम सबके बहुआयामी विकास के लिए शुभाशंसा।

राणावास — साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

इस बार तुम्हारा लाडनूं रहना कई दृष्टियों से अच्छा रहा। सर्वप्रथम तो तुम्हारा स्वास्थ्य विहार के अनुकूल नहीं है। दूसरी बात 'देशीशब्दकोश' का अधूरा काम भी पूरा करना था। श्रम तो काफी करना पड़ा पर काम को किनारे तक पहुंचा दिया, यह प्रसन्नता की बात है। दिमाग पर, मन पर थोड़ा भी भार डाले बिना जितना संभव हो काम करती रहो। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता रखो। अपनी अपेक्षाओं के बारे में साध्वियों को बताने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अधिक संकोच में स्वास्थ्य की उपेक्षा काम में बाधा उपस्थित कर सकती है। प्रसन्न और समाधिस्थ रहना। स्वास्थ्य का ध्यान रखना। शेष संवाद समणियों से जानना।

लाडनूं में वृद्ध साध्वियों और सेवाभावी साध्वियों का सौहार्द और सहयोग तुम्हें मिला ही है।

तुम्हारे रहने से उनको भी कई सुविधायें हुई हैं।

सब साध्वियां आत्मस्थ रहें।

दिल्ली **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

१२-१०-१९८७

साध्वी विमलप्रज्ञाजी, सिद्धप्रज्ञाजी, श्रुत-मुदितयशाजी, पीयूषप्रभाजी, शुभ्र/संचित/कांतयशाजी!

तुम लोग आत्मस्थ, स्वस्थ और समाधिस्थ हो, जानकर प्रसन्नता हुई। आगमकार्य और अध्ययन अच्छे ढंग से चल रहा है और अच्छे ढंग से चलाना है। तुम्हारे वहां रहने से समणियों, मुमुक्षु बहनों को उचित मार्गदर्शन और प्रेरणा मिल रही है। इससे तुम्हारी क्षमता के विकास की संभावना है। मनोयोग से अपना काम करती रहो, गुरुदेव का मंगल आशीर्वाद साथ में है ही। क्षेत्रीय दूरी से भी हमारी मंगलभावनायें, शुभकामनायें वहां पहुंचकर तुम्हारी ऊर्जा बढ़ाती रहेंगी।

१६-१२-१९९० **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी! अमृतयशाजी!

साधना के नये क्षितिज उन्मुक्त कर लक्ष्य की ओर बढ़ती रहो। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता रखना। श्रम का संतुलन रखना। अध्ययन-अध्यापन में रत रहना, पर स्वास्थ्य की स्थिति देखकर। अमृतयशाजी को अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराना।

स्वाध्याय, ध्यान, जप का सामूहिक क्रम चल सके तो चलाना। स्वस्थता, समाधि और प्रसन्नता के लिए मंगलभावना।

बीदासर — **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

११-०४-१९९७

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

दीक्षा की पाव सदी पूरी हो गई। विगत पच्चीस वर्षों में आगमों की अच्छी परावृत्ति हो गई। यह एक अमूल्य आलम्बन है। साधना और शिक्षा दोनों दिशाओं में विकास का आधार है। मानसिक समाधि का सेतु है।

तुम्हारा मनोबल और धृतिबल प्रशस्य है। अगले वर्ष शरीरबल को पुष्ट करने का लक्ष्य बनाओ। साधना, सेवा, स्वाध्याय आदि कार्यों में यही सहयोगी है। तुम्हारी साधना निर्विघ्न आगे बढ़े, यही मंगलभावना है।

लाडनूं — **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

२०-११-१९९९

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

संकल्प शक्ति और कार्यजा शक्ति तुम्हारी जीवनशक्ति को बढ़ा रही है। जप, अनुप्रेक्षा आदि के द्वारा संकल्प शक्ति को और अधिक पुष्ट करो। गुरुकृपा से तुमको आगमकार्य करने का सौभाग्य मिला है। तुम्हारी कार्यनिष्ठा और सहनशीलता भी उल्लेखनीय है। आत्मा, मन और शरीर से स्वस्थ रहती हुई साधना करो।

लाडनूं — **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

१५-११-२०००

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

सुखपृच्छा!

स्वास्थ्य का ध्यान रखना। 'आगमकोश' का काम चलता रहेगा। काम की धुन में स्वास्थ्य को गौण मत करना। बीदासर में संथारावालों को तुम्हारा अच्छा सहयोग मिला। तुम्हारी सक्रियता सबके लिए स्पृहणीय है।

स्वास्थ्य के लिए मंगलभावना।

पचपदरा **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

२४-०२-२००२

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

बीदासर का प्रवास सानन्द सम्पन्न हुआ। लाडनूं में वृद्ध साध्वियों को स्वाध्याय-ध्यान के प्रयोग कराती रहना। सेवाकेन्द्र में साधना का वातावरण बना रहे। ध्यान, जप, स्वाध्याय आदि में सबकी तल्लीनता रहे, यह प्रेरणा देती रहना।

स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

जसोल **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

०६-०३-२००२

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

स्वास्थ्य की अनुप्रेक्षा और मानसिक संकल्प निष्ठा से उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कर अपनी दैनिकचर्या को पूर्ण रूप से व्यवस्थित करने का लक्ष्य बनाओ। आस्था, संकल्प और जप की त्रिपदी तुम्हें स्वास्थ्य का वरदान देती रहे।

बीदासर **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

१०-०३-२००५

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

अपनी साधना आराधना के साथ वृद्ध साध्वियों को स्वाध्याय ध्यान कराने में अपने समय को नियोजित करो तथा अपने स्वाध्याय के प्रति जागरूक रहो।

महरौली, दिल्ली साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

२००५

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

शरीरबल और मनोबल के बीच संतुलन रखना।

श्रम और विश्राम के बीच संतुलन रखना।

विचार और निर्विचारता के बीच संतुलन रखना।

संकल्प और औषधि के बीच संतुलन रखना।

विनय और वात्सल्य के बीच संतुलन रखना।

संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण करने का लक्ष्य बनाओ और उस दिशा में आगे बढ़ो।

बादलिया साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

१०-०३-२०१०

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

तुम श्रुताराधना में अपने समय को सार्थक कर रही हो। इससे तुम्हें एनर्जी मिलती है और तुम्हारी समाधि अक्षुण्ण रहती है। तुमने दुर्बल शरीर में प्रबल मनोबल का उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्वाध्याय एवं समाधि के लिए मंगलकामना।

बीदासर साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

३०-१२-२०१०

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

शारीरिक दुर्बलता के बावजूद तुम्हारा मनोबल मजबूत है। निरंतर पुरुषार्थ करती रहती हो। आगम साहित्य व अन्य साहित्य का जो भी कार्य तुम्हारे सामने आता है, पूरे मनोयोग से उसे सम्पन्न करती हो। तुम्हारी सहनशीलता, गंभीरता और अंतर्मुखता बढ़ती रहे। स्वास्थ्य की मंगलकामना।

०६-०२-२०११ **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

अस्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन की जीवंत प्रतीक हो तुम! तुम्हारी संकल्प शक्ति अटूट है। तुम्हारा आस्थाबल पुष्ट है। तुम्हारा धैर्य अविचल है। तुम्हारा विश्वास कर्म में है। तुम निरंतर गतिशील हो। तुम्हारे शरीर की स्थिति को देखने वाले द्रवित हो जाते हैं, पर तुम चट्टान की तरह मजबूत हो। शारीरिक दुर्बलता के कारण तुम यहां नहीं आ सकी, पर तुम्हारी भावधारा में यहां के प्रतिबिम्ब उभरते ही होंगे।

तुम्हारी संकल्प शक्ति, कर्म शक्ति और आस्था शक्ति की नई स्फुरणा के लिए मंगलभावना।

५-०७-२०१२ **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

शरीर से कमजोर हैं पर मन से मजबूत हैं। इतनी दुर्बलता में भी दिन-रात श्रम कर रही हैं। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता रहे।

संतुलित श्रम करें।

पालड़ी **साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा**

११-०७-२०१२

साध्वी सिद्धप्रज्ञाजी!

लगभग चार दशकों की संयमयात्रा में तुम्हारे शारीरिक दृष्टि से अनुकूलता कम रही, पर मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहा। गुरुकृपा से तुम्हें लम्बे समय से लाडनूं में रहने का अवसर मिल रहा है। वहां तुम स्वाध्याय-योग की गहरी साधना कर रही हो। इस साधना क्रम में आगम साहित्य तथा अन्य साहित्य का भी भरपूर अवगाहन किया और अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग किया। इस समय तुम अस्वस्थ हो, पर चिन्ता मत करना। गुरु एवं संघ की शक्ति के साथ तुम्हारा अपना मनोबल सबसे बड़ी औषधि है। साध्वी प्रमोदश्रीजी आदि सभी साध्वियों का सेवाभावना से अनुप्राणित सहयोग तुम्हारे स्वास्थ्य लाभ में निमित्त बने, यही मंगलकामना है।

जसोल
६-०७-२०१२

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

परिशिष्ट

बख्शीस

समय-समय पर गुरुदेव ने महती अनुकम्पा कर उन्हें बख्शीसें भी की—

• औषध की विगय-वर्जन की बख्शीस।

• चाय के लिए सायंकालीन उष्ण भोजन (अथवा जो भी विधि) वर्जन की बख्शीस।

• नित्यपिंड पय की विगय-वर्जन की बख्शीस।

• सेवा/समाधिकेन्द्रों में समुच्चय आहार की बक्शीस।

• शयन अवधि से अतिरिक्त शयन की अनुज्ञा एवं विगय-वर्जन की बख्शीस।

परिवार के दीक्षित साधु-साध्वियां

तपस्वी मुनिश्री हुलासमलजी (दम्पति) संसारपक्षीय फूफाजी	साध्वीश्री मालूजी (संसारपक्षीय बुआजी)
मुनिश्री अमृतानन्दजी	पिताजी
मुनिश्री वत्सराजजी	ज्येष्ठ भ्राता
मुनिश्री बालचन्दजी	ज्येष्ठ भ्राता
साध्वीश्री छोटांजी	ज्येष्ठा भगिनी
साध्वी यशोधराजी	ज्येष्ठा भगिनी
साध्वीश्री चांदकुमारीजी	भतीजी
साध्वीश्री अमृतयशा	भतीजी
साध्वीश्री गणेशांजी	भाभी
मुनिश्री अरविन्दकुमारजी	भतीजा (गणमुक्त)

संस्कारदाता मुनिश्री अमृतानन्दजी

अपनी दो पुत्रियां मैं (साध्वी यशोधरा) तथा साध्वी सिद्धप्रज्ञा व पौत्र अशोक कुमार को धर्मसंघ में समर्पित कर स्वयं अपनी पौत्री सुमन के साथ गुरु चरणों में समर्पित हो गए। श्रमणोपासक से मुनि बन गए। अमृत महोत्सव पर दीक्षित होने के कारण प्रतीक रूप में उनका नाम चन्दनमलजी से मुनि अमृतानन्द और मुमुक्षु सुमन का साध्वी अमृतयशा रखा गया।

गृहस्थ अवस्था में भी उन्होंने एक आदर्श श्रावक का जीवन जीया। साधु-साध्वियों की सेवा में वे सदा तत्पर रहते। सेवाकेन्द्र के समीप घर होने के कारण घर के बाहर खड़े-खड़े भावना भाते। जब तक साधु-साध्वियां गोचरी नहीं पधारते, तब तक चाहे बारह ही बज जाएं, वे खड़े रहते।

धर्मसंघ के इतिहास के कलेक्शन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। इसलिए सैंकड़ों घटनाओं का संग्रह उनके पास उपलब्ध था। जब कभी अवसर मिलता वे साधु-साध्वियों को सुनाने में भी बहुत रस लेते थे। परिवार में धार्मिक संस्कार भरने में सदा जागरूक थे। वक्तृत्वकला के विकास में भी उनका पूरा योगदान रहता। वे बराबर सीख देते रहते कि बड़े भाषण बोलने के लिए कहें तो कभी भी मना नहीं करना चाहिए। मना करना बड़ों का अपमान करना है। माता-पिता के सुसंस्कारों की ही फलश्रुति है—परिवार की चार-चार सन्तानों की दीक्षा। दीक्षित होने के बाद भी वे समय-समय पर प्रेरणा व सजग करते रहते थे।

साधु-साध्वियों की रास्ते की सेवा में भी उन्हें बहुत रस आता था। पूज्य गुरुदेव ने मुझे जब विहार-बंगाल की यात्रा का निर्देश दिया, तब उन्होंने लगभग १३०० कि.मी. की पदयात्रा की। पांच साल बाद जब हमें गुरुदर्शन का आदेश मिला तब पटना से उदयपुर तक लगभग १५०० कि.मी. की

पदयात्रा की। एक दिन भी गाड़ी में शायद नहीं चढ़े। विहार २५-३० कि.मी. का होता, सहयात्री उनके लिए गाड़ी भेजते पर वे उसे वापिस लौटा देते। जब हम उन्हें कहती कि आपको त्याग तो है नहीं? उनका एक ही उत्तर होता—साध्वीश्री! मन बड़ा सुविधावादी है यदि एक बार चढ़ गया तो फिर नहीं चल पाऊंगा।

इस यात्रा से उनके मन में विश्वास जगा कि मैं ७२-७३ वर्ष की उम्र में भयंकर सर्दी-गर्मी में भी पैदल चल सकता हूं। वैराग्य के अंकुर भीतर ही भीतर प्रस्फुटित हो रहे थे। उन्होंने अपने आपको तोला, परखा, संकल्प को मजबूत बनाकर गुरुदेव के श्रीचरणों में विनम्र निवेदन किया—

गुरुदेव! तुम्हारा यह बाल सखा सुदामा (एक मुहल्ले में रहने के कारण बचपन में साथ-साथ खेले थे) पन्द्रह सौ कि.मी. पांव-पांव चलकर तुम्हारे द्वार पर आया है। अब अपनी चरण-शरण में लेकर भव-सागर से पार उतारें।

भक्तवत्सल आचार्यप्रवर ने उनको जांचा, परखा फिर मेरी संसारपक्षीया मां से पूछा—बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है? उन्होंने एक वीरांगना के रूप में निवेदन किया—गुरुदेव! हमने दाम्पत्य जीवन के प्रारम्भ में ही यह संकल्प कर लिया था कि हमारे परिवार से कोई भी दीक्षा लेगा, हम मना नहीं करेंगे। आप मेरी चिन्ता न कराएं। मेरी सेवा में दो-दो पुत्र सम्पत और शान्तिकुमार हैं। आप इन्हें दीक्षित कर इनकी भावना पूर्ण करें। मैं इनकी दीक्षा में बाधक नहीं बनूंगी। संस्था में पोती सुमन है, आप दोनों को तारें, भवसागर से पार उतारें।

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने सुधर्मा सभा में सम्भाषण करते हुए निवेदन किया—गुरुदेव! इन्होंने संघ की सेवा की है। दो-दो पुत्रियों का दान दिया है। स्वस्थ हैं, संघ को सेवा देने वाले हैं। यदि संघ को सेवा देनी भी पड़े तो भी इनको दीक्षा देनी चाहिए।

तीर्थवत्सल गुरुदेव ने करुणामृत की वर्षा करते हुए २०४३ भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा (१८ सितम्बर १९८६) को दादा-पोती को एक साथ जैन भागवती दीक्षा प्रदान की। पूज्यप्रवर ने फरमाया—यह स्वस्थ है, कष्टसहिष्णु है, संस्कारी है अतः तिहत्तर वर्ष की उम्र में मैंने इसको दीक्षा दी है। सबसे बड़ी उम्र की मेरे हाथ से यह पहली दीक्षा है।

दादा-पोती ने सहदीक्षित होकर धर्मसंघ में नया कीर्तिमान स्थापित किया।

उन्हें मुनिश्री जशकरणजी की सेवा में बोरावड़ भेजा गया। वहां बड़े मनोयोग से छोटे संत की तरह उनकी सेवा की। दो वर्ष में लगभग एक लाख पद्य परिमाण साहित्य का वाचन कर श्रुताराधना में योग दिया। ५० हजार का लगभग जप किया। आहार में बड़े सन्तों ने जो परोसा उसे सहर्ष स्वीकार किया, कभी मांग नहीं की कि मुझे अमुक द्रव्य चाहिए।

उनकी सेवा से प्रसन्न होकर मुनिश्री जशकरणजी ने गुरुदेव के श्रीचरणों में निवेदन किया—पूज्यप्रवर ने मेरे पर अनुग्रह कर एक नहीं दो-दो चीजें भेजी हैं—अमृत और आनन्द। पचहत्तर वर्ष की उम्र में उन्होंने बोरावड़ के प्रायः सभी घरों से पानी की गोचरी की। पन्द्रह दिनों में एक बार सभी घरों से थोड़ा-थोड़ा पानी लेकर लोगों को गोचरी का लाभ दिया। उनकी इस गोचरी से स्थानीय श्रावक भी बहुत संतुष्ट हुए।

गुरुदेव ने अनुग्रह कर योगक्षेमवर्ष में उन्हें लाडनूं बुला लिया। श्रद्धेय युवाचार्यश्री ने एक बार फरमाया—

ये कहते हैं—मैं वहां बोरावड़ में बड़ी चित्तसमाधि में हूं। 'जब तक सेवा दे सको सेवा दो। न दे सको तो लो। डर की कोई बात नहीं है।'

पूज्य गुरुदेव ने सुधर्मा सभा में (योगक्षेमवर्ष समापन पर) फरमाया—'देखो, अमृतानन्दजी को! ७८ वर्ष के हैं ८० में दो वर्ष कम हैं। बड़ी चित्तसमाधि में हैं।' गुरुदेव के शब्दों में 'मुनिश्री अमृतानन्दजी ने धर्मसंघ में एक सेवाभावी, वैरागी, आत्मार्थी और समर्पित साधु के रूप में अपनी गरिमापूर्ण पहचान बनाई है।'

अनवरत भावों की पवित्रता ने मन की प्रसन्नता को कभी धूमिल नहीं होने दिया। अपनी जागृत चेतना से एक-एक क्षण का सार निकालने का प्रयास किया। जीवनपर्यन्त अध्यात्म साधना और जप-स्वाध्याय में लीन रहे। जिस लक्ष्य से साधना की दिशा में कदम रखा, उस दिशा में निरन्तर गतिमान रहे।

अंतिम प्रवास सुजानगढ़ में मुनिश्री जंवरीमलजी की सन्निधि में था। संयमयात्रा की अन्तिम रात्रि, प्रतिक्रमण के पश्चात् वे मुनिश्री के उपपात

में वन्दना की मुद्रा में बैठे, विनम्र निवेदन किया—मुनिश्री! अब मैं अपने आपको स्वस्थ (बीच में श्वास-प्रकोप हो गया था) अनुभव कर रहा हूं। अतः

- अब मैं दवा छोड़ रहा हूं।
- मुझे कोई काम सौंपे, जिससे मैं निर्जरा-वैभव अर्जित कर सकूं।
- मुझे एक आगम पढ़ाने की कृपा कराएं।

इस प्रकार स्वस्थ समाधिस्थ, आत्मस्थ और आश्वस्त जीवन जीते हुए रात्रि में विधिपूर्वक शयन किया। ब्रह्मवेला में अर्हत्वन्दना के समय उनकी अनुपस्थिति देखकर संत वहां पहुंचे। उन्हें उठाने की कोशिश की पर कौन उठे? वे सदा के लिए चिरनिद्रा में सो गए। २३ मई १९९० को जिस सिंहवृत्ति से संयमयात्रा प्रारम्भ की उसी सिंहवृत्ति से रत्नत्रयी की आराधना करते हुए अपनी यात्रा को सानन्द सम्पन्न की।

ऐसी पवित्रात्मा को श्रद्धासिक्त भावभरा नमन...

शासनश्री साध्वी सिद्धप्रज्ञा

जन्म	:	वि.सं. २००७ कार्तिक कृष्णा एकादशी
पिताश्री	:	श्री चन्दनमलजी गोलछा (स्व. मुनिश्री अमृतानन्दजी)
मातुश्री	:	स्व. रायकंवरी गोलछा
जन्मस्थली	:	लाडनूं (राजस्थान)
दीक्षा	:	दिल्ली-लालकिला २०३१ सन् १९७४ (द्वारा युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के मुखारविन्द से)
यात्रा	:	दिल्ली से लाडनूं-उदयपुर-श्रीडूंगरगढ़
साहित्य	:	निरुक्तकोश, श्रीभिक्षु आगमविषयकोश-२, जैन पारिभाषिक शब्दकोष, देशीशब्दकोश के निर्माण में सहभागी, श्रुतपरिक्रमा, बिना किसी नाम के आगम साहित्य में सहयोगी। विशेष : अचिकित्सा की विशेष साधना, संथारों में विशेष सेवा-सहकार।
संबोधन	:	शासनश्री (द्वारा आचार्यश्री महाश्रमण)
स्वर्गगमन	:	श्रावण कृष्णा सप्तमी १० जुलाई २०१२

□□

साध्वी यशोधरा

जन्म	:	वि. सं. 1997 पौष कृष्णा 7
पिताश्री	:	चन्दनमलजी गोलछा (स्व. मुनिश्री अमृतानन्द जी)
जन्मस्थली	:	लाडनूं (राजस्थान)
दीक्षा	:	कार्तिक कृष्णा 8 वि.सं. 2013
स्थान	:	सरदारशहर
अग्रगण्य	:	वि.सं. 2028
यात्रा	:	राजस्थान, उ.प्र., बिहार, बंगाल, आसाम, भूटान, नेपाल, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू, पाण्डीचेरी, आंध्रप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, म. प्र.
अध्ययन	:	हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, बांग्ला, न्याय, दर्शन, आगमों, का गुरुसन्निधि में तलस्पर्शी अध्ययन।
संबोधन	:	साध्वी नियोजिका (द्वारा–गुरूदेव श्री तुलसी) साधना निकाय व्यवस्थापिका (द्वारा–गुरुदेव श्री तुलसी) संस्कारनिर्माण प्रभारी (द्वारा–आचार्य श्री महाप्रज्ञजी) शासनश्री (द्वारा–आचार्य श्री महाश्रमण जी)
कृति	:	अध्यात्मबोध, नया सवेरा, गीतों का गुलदस्ता, कथानिकुंजम् (संस्कृत), तेरापंथ परिचायिका (बांग्ला), चैतन्यमुकुल (बांग्ला), प्रेक्षाध्यानःआधार और स्वरूप और प्रेक्षाध्यान : श्वासप्रेक्षा (बांग्ला में अनुवाद)